॥ श्रीः ॥

बुन्देलखण्ड-केशरी ।

अर्थात्

श्रीमन् महाराजाधिराज श्री १०८ बुन्देल वंशावतंश

महाराज छत्रसालजी

का

जीवन चरित

[प्रथम भाग]

श्री श्री कुँवर ढाकन जू देव के भतीजे-

कुँवर कन्हैया जू

लिखित

और

बाबू माधोप्रसाद द्वारा प्रकाशित ।

॥ दोहा ॥

पद्माकर किन सिंह को कियो राज्य अभिषेक ।
अपने बल मृगराज भो हनि गजराज अनेक ॥

BENARES:

PRINTED AT THE LAHARI PRESS.

1906.

प्रथम बार १०००] मूल्य ।≈)

विषय सूची।

बुन्देलखण्ड केशरी।

सोरठा।

*बन्दौ गुरु कवि "दीन," दीन ज्ञान कविता विषय।
मम मति जड़ता छीन, नित पुनीति शिक्षा दई॥

बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त भूगोल।

भारत वर्ष को मध्य भूमिका का नाम बुन्देलखण्ड है या यों कहिये कि बुन्देलखण्ड को ही मध्य भारत कहते हैं गवर्नमेंट में यह देश सेन्ट्रल इण्डिया के नाम से प्रसिद्ध है। बुन्देलखण्ड, दक्षिणोत्तर अक्षांश २३।५१ से २६।२६ और पूर्व्व देशान्तरांश ७७।५२ से ८१।३९ के अन्तर्गत उत्तर में यमुना नदी, दक्षिण में नर्मदा, पश्चिम में सिंध और चम्बल, पूर्व्व में टौंस और सोन नदी के मध्य में विस्तृत है।

इस देश की उत्तरीय सीमा यमुना नदी जो इस देशको पश्चिमोत्तर देश से पृथक करती है, दक्षिण में मध्य प्रदेश के भाग सागर, दमोह और जब्बलपुर के ज़िले हैं, पश्चिम में राज्य ग्वालियर और सिंध नदी है, परन्तु पश्चिमोत्तर में सिंध नदी के उस पार जहां राज्य दतिया का परगना

---

* लाला भगवानदीन सेकिन्ड मास्टर महाराजा हाई स्कूल प्रसीडेन्ट काव्यलतासभा और भारती भवन पुस्तकालय छत्रपुर उपनाम कवि 'दीन'।

सेंहुड़ा का इलाका है वहां तक ही इसका विस्तार है। पूर्व में राज्य रींवां व बघेलखण्ड और दक्षिण में मैहर के राज्य की भूमि को छोड़ टौंस नदी है। बुन्देलखण्ड की लंबाई वायव्य से अग्नेय को २०० मील और चौड़ाई १५० मील से अधिक है। क्षेत्रफल २०१८६ वर्ग मील के अनुमान है।

बुन्देलों के रहने का भूमिखंड "बुन्द+इला+खण्ड" इन तीन शब्दों के योग से बुन्देलखण्ड शब्द बना है और बुन्द यह बिन्दु शब्द का अपभ्रंश है। इस प्रान्त का वह भाग जो कि वृटिश गंवर्नमेंट के राज्याधीन है वृटिश बुन्देलखण्ड कहलाता है। यह भूमि कई ज़िलों में बटी हुई है, जैसे—बांदा, हमीरपुर, जालौन, झांसी, ललितपुर वगैरह इसके सिवाय शेष भूमि पर दतिया, समथर, पन्ना, चरखारी, बिजावर, अजैगढ़, छत्रपूर, बावनी, सरीला यह नौ रयास्तें और खनियाधाना, जिगनी, जसो, लुगासी, गौरहार, पालदेव, भैसोंदा, डौगरा, कोटरा, बिजना, टोरी-फतेपुर इत्यादि छोटी २ कई जागीरें हैं जिनको गवर्नमेंट की कृपा से अब भी योग्यतानुसार दीवानी फौजदारी के कुछ अधिकार हासिल हैं उक्त रयासतें और जागीरें सेंट्रल इण्डिया एजेंसी के अन्तर्गत पुलिटिकल एजेन्ट बुन्देलखण्ड से सन्बन्ध रखतीं हैं।

पहाड़—इस प्रान्त में रामेश्वर, चित्रकूट, कामतानाथ, बांदरे, बरगढ़, अजैपाल, भैारा, मनियागढ़, मचरार, वगैरः नामी पहाड़ हैं, इनमें भी "मनियागढ़" जोकि राज्य छत्रपूर के अन्तर्गत राजगढ़ में है और अजयपाल जो

कि अजयगढ़ में है जड़ी बूटियों के लिये प्रसिद्ध और देखने योग्य स्थान है। घाटी विन्ध्याचल की श्रेणी भी इस प्रान्त के मध्य में विस्तृत है। फ्रेंकलिन साहब ने इस श्रेणी के तीन विभाग किये हैं। प्रथम भाग सेडुड़ा से प्रारम्भ होता है और वहां से पश्चिम की ओर नरवर के निकट और वहां से दक्षिण को ओर ग्वालियर और ललितपूर के करीब पूर्व ओर नाराट वाला बीहट राज टेहरी होता हुआ जिला झांसी तहसील मउ में विस्तृत है, दूसरा भाग उसी श्रेणी का राज्य पन्ना से प्रारम्भ होकर उसके पूर्व दक्षिण की ओर राज्य अजैगढ़, बिजावर, पन्ना चरखारी, छत्रपूर के राज्य में होता हुआ कालिंजर तक चला गया है।

नदी—इस प्रांतकी सब से बड़ी नदी यमुना है जो कि उत्तर में इस देश को पश्चिमोत्तर देश से पथक करती है और शेष बुन्देलखण्ड की नदियां बेतवा, सिंध, धसान (दशारन), केन, टोंस, पहूज, बाघेन, चन्द्रावल, पयस्विनी, उरमिल, केल और नन हैं यह परस्पर एक दूसरे से मिल कर सब जमुना में मिलती हैं। धसान नदी इस मुल्क को ठीक दो भागों में विभाजित करती है। इसके पश्चिमी किनारे की भूमि अच्छी और उपजाऊ है और पूर्व किनारे की जमीन जिसे डँगाई कहते हैं कुछ कड़ी और पथरीली है।

धसान नदी से बांटे जाने के कारण जिस प्रकार इस देश की भूमि में भिन्नता है उसी प्रकार यहां के रहने वाले

मनुष्यों की रहन गहन और बोलचाल में भी कुछ भेद है। यहाँ के आदमी प्रायः पांच फुट ६ इंच लम्बे चेहरा सुडौल रङ्ग कुछ सुर्खी मायल गेहुआं, अक्सर मोटे कम मगर मजबूत और मेहनती होते हैं। यह लोग प्रायः कपटी और छली नहीं होते मगर उजड्ड और बेसमझे बूझे काम करने वाले और अपनी जिद्द के पक्के होते हैं।

प्रिय पाठको ! महाराज छत्रसालजी विक्रमी १८वीं शताब्दि में उपरोक्त डँगाई के राजा होगए हैं। आपका जन्म बुन्देला वंश के एक सामान्य पुरुष के घर में हुआ था किंतु इस पुरुषार्थी वीर पुरुष ने एक मात्र अपनेही बाहुबल और उद्दण्ड पराक्रम से यवन दल मदोल मत्त मातंगों को पद दलित करके और यवन साम्राज्य रूपी उपवन में खरभर पारकर डँगाई में अपना राज्य स्थापित किया। देखिये महाराज छत्रसाल जी बुन्देलखंड केशरी हैं न !

बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त प्राचीन इतिहास *।

यद्यपि बुन्देलखंड प्रांत अनेक प्रकार के प्राकृतिक और ऐतिहासिक रहस्योंं से भरे होने के कारण परम आनंद दायक स्थान है यहां पर भी स्थान २ पर शिलालेख और अनुपम स्मार्क उपस्थित हैं किंतु खेद का विषय है कि इस ओर पुरातत्ववेत्ता विद्वानों का मटियाहट होने के कारण यहां के प्राचीन इतिहास का १६००वर्ष से ऊपर का श्रेणी बद्ध पता नहीं चलता। किसी प्रकार से निश्चय हुआ है कि विक्रमी शक के कुछ दिन पहिले से यह देश पड़िहार वंशीय क्षत्रियों के आधीन था और राजधानी उनकी ओरछा नगर था जो कि बेत्रवती या बेतवा नदी के किनारे बसा हुआ है और इस समय बुन्देलावंश की सब से बड़ी राजधानी गिनी जाती है। उक्त पड़िहार वंश में जुझार सिंह और महीपक्ष यह दो सब से बड़े और प्रताप शाली राजा होगए हैं। जुझारसिंह विक्रमी पांचवीं शताब्दि में वर्तमान था, उसके न्यायकारी और प्रजा प्रिय होने के कारण इस देश का नाम भी जुझौति देश † होगया था? किंवदंती है कि संबत् ४११ में राजा

---

* इस विषय के मैंने जो संबत् जहां से जैसे पाये उन्हें वैसाही रख दिया है वह संबत् अनन्द है अथवा सनन्द इसका मैं निश्चय नहीं कर सका और इसीसे उनका खीष्टाब्दि से मिलान नहीं किया क्योंकि कवि चन्द कृत पृथ्वीराज रासौ में जितने संबत् हैं सब अनन्द हैं और वह प्रचलित संबत् से ८१ वर्ष कम पड़ते हैं इससे मालूम होता है सनन्द के पहिले अनन्द संबत् काही प्रचार था।

† पुराणों में इस देश का नाम "द्रशारन देश" करके लिखा है आज

जुझारसिंह ने १३ ब्राह्मणों का पूजन कर उन्हें भूमिदान दिया जिनकी संतान में बुन्देलखण्ड के जुझौतिया ब्राह्मण हैं। इसके पश्चात ८वीं शताब्दि में राजा महीपक्ष हुआ जिसने मातृऋण से उऋण होने के लिये लोह के तप्त तवाओं पर बैठ कर पिंडदान किया था। नौगाव कंटौनमेंट से ५ मील जो दक्षिण पूर्व्व को मऊ ग्राम है वह भी इसी राजा महीपक्ष पड़िहार का आबाद किया हुआ है। और उक्त यज्ञ भी इसी स्थान पर किया गया था जिसके अब भी कुछ २ चिन्ह शेष हैं।

विक्रमी सम्वत् २०४ में, कालिंजर के निकट चांद पाठा नामक ग्राम में चंद्रवंशी घराने में चंद्रब्रह्म नामक एक पराक्रमी पुरुष उत्पन्न हुआ। उसे चंद्रदेव का यह बरदान हुआ कि जब तक मद, जुवा, वेश्या का संसर्ग तू या तेरी संतान न करेगी और ब्रह्म पर नाम रहेगा जैसे चन्द्रब्रह्म इत्यादि तब तक इस देश का राज्य तेरेही बंश

कल संकल्प इत्यादि में उसी का उच्चारण होता है। विष्णु धर्मोत्तर नामक ग्रन्थ में इस देश को युद्ध देश करके लिखा है यथा श्लोक—

चैद्य नैषधयोः पूर्वे विन्ध्य क्षेत्राच्च पश्चिमे।
रेवा यमुनयोर्मध्ये युद्ध देश इतीर्य्यते॥

पुनः मदनपूर के शिलालेख में इस देश का नाम जेजाक भुक्ति पाया जाता है जिसका सम्बन्ध जैशक्ति नामक चन्देल राजा से पाया जाता है और इस देश के जुझौतिया ब्राह्मण भी इन दोनों प्रमाणों से इस देश का प्राचीन नाम युद्ध देश, जेजाक भुक्ति वा "जुझौति" देश मानते हैं, मदनपूर का लेख यों है—

अरुण राजस्य पैात्रेणश्रीसोमेश्वर सूनुना।
जेजाक भुक्ति देशोयं पृथ्वीराजेन लूनिता॥

में रहेगा। निदान इसका राज्य कालिंजर में स्थापित हुआ। कालिंजर का दुर्ग भी इसी चन्द्रब्रह्म ने संः२२१में बनाया। कुछ दिन के बाद इस वंश की राजधानी खजुराहे या खजूरपूर में स्थापित हुई जहां कि सब चिन्ह अब भी चन्देल राज्य के पाये जाते हैं। ग्यारहवीं शताब्दि में इस वंश का राज्य पंजाब में सिंध नदी के किनारे तक बढ़ गया और उस समय के वर्तमान राजा नंद ब्रह्मने कईएक मुसलमान आक्रमण कर्ताओं को शिकस्त दी किंतु चन्द्रब्रह्म से २१वीं पीढ़ी में राजा परिमाल चन्देल अपने वंश की सनातन मर्य्यादा को तोड़ने वाला उत्पन्न हुआ और जिसका परिणाम भी यह हुआ कि यह देश दिल्लीके प्रख्यात राजा पृथ्वीराज चहुआंन के आधीन होगया। सम्बत् ११४०में पृथ्वीराज की ओर से एक खीची सरदार और खेते नामक यहां के खँगार सूबेदार मुकर्रर हुए किन्तु सम्बत्११५६में जब कि पृथ्वीराज स्वयं शहाबुद्दीन का बंदी होगया और खीची सरदार भी उसी युद्ध में मारा गया तो खेते खँगार खुदमुख्तार बन बैठा। निदान सम्बत् ११५६ से सम्बत् १३१३ तक बुन्देलखण्ड पर खँगारों का अधिकार रहा संबत् १३१३ में बुन्देला सहनपालजी ने खँगारों को सपरिवार मार कर बुन्देलखण्ड पर अपना अधिकार जमाया तबसे अब तक बुन्देलावंश का राज्य इस देश में बराबर चला आता है। जिसका वर्णन पुस्तक के अंत में किया गया है॥
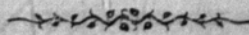
बुन्देलों की संक्षिप्त वंशावली और बुन्देलखण्ड में राज्य स्थापन।

बैवस्वत मन्वंतर के आदि में शेषशाई नारायण के नाभि कमल से ब्रह्मा, ब्रह्मा, से मरीचि, मरीचि से कश्यप, कश्यप के दिति, अदिति, नन्दनि, अरिष्टा, सुरसा, मुनि, क्रोध बसा, तृना, सुरभि, सर्मा, बनिता, और कुद्रू तेरह स्त्री थीं, जिनसे यक्ष, किन्नर, गंधर्व, नर, नाग, सुर, असुर इत्यादि उत्पन्न हुए और अदिति नाम स्त्री से सूर्य्य भगवान का जन्म हुआ जिनसे सूर्य्य वंश की वृद्धि हुई इसी सूर्य्य वंश में रघु, भागीरथ सगर, पृथु, अज और दशरथ इत्यादि भूविख्यात राजा लोग हुए हैं, दशरथ के पुत्र रामचन्द्रजी के लव और कुश दो पुत्र थे। द्वितीय पुत्र कुश के चार पुत्र हुए उनमें से तीसरे से राष्टवर या राठैारवंश की उतपत्ति हुई, इसी राष्ट्रवर बंश में गहिर देव नाम का एक राजा हुआ कि जिसकी सन्तान गहिरवार क्षत्रियों के नाम से प्रसिद्ध हुई और किसी प्रकार इन लोगों ने काशीपुरी में अपना राज स्थापन किया। गहिरदेव का न्हानचन्द, इनके पदमचन्द, इनके गोविंद चन्द, इनके टिहूपाल, इनके विंध्यराज, इनके सैानक देव, इनके विट्ठलदेव, इनके अर्जुनदेव, और अर्जुनदेव के दिवोदास या बीरभद्र हुए। राजा बीर भद्र के दे। रानियां थीं तिन में से ज्येष्ठ रानी के चार महाराज कुमार हुए और छोटी से हेम करण नाम का एक कुमार जन्मा।

यद्यपि बीरभद्र के पश्चात जेष्ठ रानी का जेष्ठ पुत्र छत्रसाल राज्य पाने का अधिकारी था किंतु राजा की कनिष्ठा रानी पर प्रीति विशेष होने के कारण उन्होंने राज्य का भार हेमकर्ण को देना विचार कर शेष चारों कुमारों को अलग २ जागीरें देदीं किन्तु दैव योग से जिस समय कि हेमकर्ण का वय केवल १० वर्ष का था राजा बीरभद्र की सहसा मृत्यु होगई इससे हेमकर्ण के उक्त चारों भाइयों ने सम्बत ११११२ में इन्हें देश से निकाल कर राज्य पर अपना अधिकार किया।

भाइयों से निकाले जाने पर हेमकर्ण विंध्यगिर स्थित देवी विन्ध्यबासिनी की शरण में गए और वहां पर कंद मूल खाते हुए तपस्या करने लगे। ऐसा मशहूर है कि अंत में जब इन्होंने देवी को अपना मस्तक अर्पण करने के विचार से ज्यों हीं गले से तलवार लगाई कि देवी स्वयं प्रगट हुईं और उन्होंने बरदान दिया कि तुझसे उत्पन्न हुई संतान का नाम बुन्देला होगा और वह अमुक भूमि पर यह ९५० वर्ष पर्य्यंत अखण्ड सुख से राज्य करेगी, मेरी आज्ञा से तू इस समय से अपने को पंचमसिंह नाम से प्रख्यात कर कि तेरे शत्रु तुझे न जान कर तेरे पर आक्रमण करने का विचार न करें। कुछ दिन पश्चात पंचमसिंह के बीरसिंह नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। बीरसिंह के करणपाल, इनके अनंगपाल और अनंगपाल के सहनपाल और सहजेंद्र नाम के दो पुत्र हुए।

उक्त सहनपालजी की पुण्यपाल प्रमार पवांएं वाले

(जोकि महाराज मानसिंह ग्वालियर वालों के भांजे थे) और मुकटमणि धँधेरे से गाढ़ मित्रता थी, निदान सहनपालजी ने उक्त दोनों सन्मित्रों की सहायता से गढ़कुंडार में राज्य करते हुए खँगारों को मार कर आप बुन्देलखण्ड के महाराज बने और अपने भाई सहजेन्द्र की दोनों बेटियां अपने दोनों मित्रों को उक्त उपकार के बदले में व्याह दीं किन्तु इस बात से इन दोनों के बन्धु बांधव बहुत बिगड़े और उनपर यह दोष लगाया कि उन दोनों लड़कियों को जो खगारों की वाग्दत्ता थीं तुमने व्याहा है और धोखा देकर खगारों का वंश नाश किया इसलिये तुम अब जाति वर्ग से च्युत किए जाते हो, और ऐसाही किया गया। तब उन दोनों ने अपने सुहृदों समेत बुन्देलखण्ड में आन कर परस्पर बुन्देलों की सम्मति के अनुसार अपना एक नवीन वर्ग स्थापित कर लिया जिससे कि अब तक बुन्देला प्रमार धँधेरे और राजपूतों से खान-पान और विवाहादि किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है। बुन्देलखण्ड का राज्य खँगारों से लेने के पहिले सहन-पालजी खँगारों से जागीर में पाए हुए व्यौना नाम ग्राम में रहते थे जो कि कोंच से चार कोस पश्चिम में है। जब सहनपालजी गढ़कुंड़ार के राजा हुए तो इनके बड़े भाई सहजेन्द्र उक्त व्यौना के ही जागीरदार रहे यह जागीर व्यौना अब तक स्थित है और केवल १२००० की जागीर होने पर भी जागीरदार व्यौना महाराज के पद से अलंकृत हैं। व्यौना के वर्तमान जागीरदार का नाम

महाराज गोबिन्दसिंह है।

गढ़ कुंड़ार के महाराज सहनपाल जी के सैानकदेव, सैानकदेव के नैानकदेव इनके पथ्वीराज, इनके रामचन्द्र इनके मेदनीमल्ल श्रार इनके मल्लखान हुए। इन मल्लखान ने अपनी राजधानी गढ़कुंडार को छोड़ श्रोरछे में स्थापित की। मल्लखान के बाद इनके पुत्र महाराज प्रतापरुद्र ओरछे के राजा हुए। दसवीं शताब्दी में पड़िहारों का राज्य नष्ट होने के कारण श्रोरछे की शोभा भी नष्ट होगई थी इसलिये प्रतापरुद्र जी ने इस नगर को संवत् १५८८ में पुनः आबाद किया किन्तु लोकोक्ति ऐसो है कि श्रोरछे की नीव इन्हीं की डाली है। प्रतापी महाराज प्रतापरुद्र के भारथीचन्द, मधुकरसाह, उदयाजीत, सुन्दरदास, अमानदास, प्रागदास, भूपतसाह, चांद, पहाड़, जनखण्डन इत्यादि बारह पुत्र हुए जिनमें से भारथीचन्द्र गद्दी के मालिक हुए। तीन निःसंतान रहे शेष आठ ने जो २ जागीरें पाईं, उनके नाम से बुन्देलों के प्रथक २ आठ वंश प्रख्यात हैं जैसे, कटेरा, पड़रा, महेवा इत्यादि घराने के बुन्देला। भारथीचन्द के भी कोई संतान न होने के कारण मधुकरसाह जी उनके उत्तराधिकारी हुए। निदान श्रोरछे का राज्य अब तक मधुकर साह जी की संतान के शासन में है। ओरछे के वर्तमान महाराज सवाई महेन्द्र प्रतापसिंह जू देव बहादुर बड़ेही नीतिज्ञ अर्थसंचय में अत्यन्त निपुण श्रार अपव्यय न करने के लिये देश में प्रख्यात हैं। आपके दो महाराज

कुमार हैं जिनमें से प्रथम तो युवराज पद से अलंकृत हैं और द्वितीय महाराज सावन्तसिंह जी बिजावर रियासत के वर्तमान महाराज हैं।

महाराज रुद्रप्रतापजी के तृतीय पुत्र उदयाजीत को महेवा* की १२००० की जागीर मिली, राव उदयाजीत के राघवदास, काशीदास, गङ्गादास, भारथीचन्द, हृदयनरायन और प्रेमचन्द्र ये छः पुत्र हुए † अस्तुअन्य पांचो भाइयों की संतान भी हुई और छठें प्रेमचन्द के मानसाह, भगवानदास और कुंवरसाह नाम के तीन पुत्र जन्मे और इनमें भी क्रमानुसार जागीर के हिस्से हुए ‡।

भगवानदास जी के सुजानराय और चम्पतराय नाम के दो पुत्र हुए। अब इस पीढ़ी तक बराबर हिस्से बांट होते होते चंपतरायजी को उक्त जागीर का कौन सा अंश मिला होगा और इनकी आय क्या होगी सो पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं। बस यही कारण हैं कि राव चम्पतरायजी को पापी पेट के लिये बगावत करने का साहस हुआ। किन्तु धन्य है उस परमात्मा

---

* यह महेवा मड महेवा नहीं है। यह टीकमगढ़ राज्यान्तर्गत बड़ा महेवा है।

† जिस शाख में महाराज छत्रसालजी का जन्म है उसीको लिखते और सब को छोड़ देते हैं। इतर वंश के विषय में लिखना केवल ग्रन्थ का बाहुल्य मात्र होगा।

‡ बुन्देलखण्ड में अब तक प्रायः यह नियम है कि आदि जागीरदार की ज्येष्ठ सन्तान ही क्रमानुसार जागीर की मालिक होती है शेष का उस जागीर से केवल मासिक या वार्षिक जीविका मात्र से सम्बन्ध रहता है।

को उसकी गति न कभी किसी ने जानी है और न जानेगा कि कब क्या से क्या होनहार है। वाह! यह लूट मार क्या थी, साक्षात विधाता की कृपा थी या यों कहिये कि महाराज छत्रसाल जी के लिये यह काम पैतृक (पुस्तैनी) बनाने के लिये और इसीके सहारे उस वीर पुरुष का पुरुषार्थ और बाहुबल संसार में विस्तृत करने के लिये ही चम्पतराय जी को यह प्रेरणा हुई थी। किसी महात्मा का कथन सत्य है कि हमें अपनी हानि होने पर भी परमात्मा को धन्यवाद देना चाहिए क्योंकि उस के सब कार्य्य हमारे भले के लिये ही होते हैं परन्तु हमारी क्षुद्र बुद्धि उसकी गति जानने में असमर्थ है और इसी से हम स्वयं नियमानुकूल आचरण न करके उसे अनुपयोगी बना लेते हैं और उसे दूषण देते हैं! इस जीवन में भलाई और आनन्द का श्रोत ईश्वरदत्त है और कष्ट और हानि अपने ही पूर्व्वकृत कुकर्मों का परिणाम है।

उक्त राव चम्पतराय जी ने सांसारिक विषयों का ज्ञान होते ही डांके डालने का सिलसिला आरम्भ कर दिया। कुछ दिन तो ये दस पांच सिपाहियों को लिये हुए इधर उधर वक्त बेवक्त चोट करते और छिपे छिपे जङ्गलों का गश्त करते रहे किन्तु जिस प्रकार इन्हें विकट बन प्रान्त और पहाड़ी स्थानों का ज्ञान हो चला और लूट मार करके संचित आर्थिक आय भी बढ़ चली उसी प्रकार यह सैन्य संग्रह करते हुए ओरछा राज्य के

बड़े २ स्थानों पर धावा मारने लगे। चम्पतराय जी का प्रताप और बैभव शनैः २ दिन प्रति दिन वृद्धि को प्राप्त होने लगा और इनका ऐसा ज़ोर बढ़ा कि बादशाही किलेदार और थानेदार इनके नाम से खुटका करने लगे। दैवयोग से उसी समय उधर शाहजहां के चारों पुत्रों में खटपट हो उठी और इसी कारण चम्पतराय जी को और भी बनपड़ी। जब तक सल्तनत परस्पर के बैर विरोध में उद्विग्न थी तब तक चम्पतराय जी ने एक बड़ा दल जोड़ लिया और वे धर्म्म के विरोधी जनों के दांत खट्टे करने के लिये सन्नद्ध हो बैठे, किन्तु हे फूट देवी आपको नमस्कार है आपके कुटिल कृत्यों की भी बलिहारी है। भारतवर्ष की उन्नत भावी को धूल धूसरित करने वाली अविद्यावासिनी फूटदेवी देखें इस समय भी आपकी कृपा का क्या परिणाम होता है, आप की लीला विचारणीय है। चम्पतराय ने अपने को असीम यवन दल का सामना करने में असमर्थ विचार कर उस समय के ओरछाधिपति महाराज पहाड़सिंह जी को निम्न लिखित आशय का संधि पत्र लिखा—

* श्रीमहाराजा श्रीमहाराजाधिराजा श्रीमहेन्द्रमहाराजा साहब बहादुर काकाजू साहब पहाड़सिंह जूदेव येते श्रीमहाराज कोमार श्रीराव चंपतराय जूदेव के वांचने आपर आपके

---

* यह पत्र किसी प्राचीन पत्र की नकल नहीं है, केवल घटना सत्य है और उसी को देश व्यवस्था दिखाने के विचार से इतर पत्र के रूप में लिख दिया है। पत्र का संवत सत्य है।

सुखसमाचार सदा भले चाहिए ता पीछैं आपके कदमन के प्रताप सें यहां के समाचार भले हैं आपर हजूर की खुशी रहाइस की खवर जादा दिनन सें नहीं पाई सें लिखायवे में आवे और आगे हाल ईतरां है कै मोकों कदमन के दर्सन करवे की बड़ी अभलाषा है और कछू विनती सोउ करने हैं सो जो कृपा करकें मरजी होवे में आवै तो मैं ओरछे हाजिर होऊं। जांदा का बिंती लिखों पाती समाचार खुसी रहाइस की षवर लिषवाउत रहवी मिती जेठ वदि २ संवत १७७२ मुकाम महेवाहार।

महाराज पहाड सिंहजी ओरछाधिपति ने चम्पतरायजी का उपरोक्त पत्र पाकर सादर उसका उत्तर दिया और उन्हें ओरछे बुला भेजा और उनके आने पर महाराज ने उनका यथोचित सम्मान किया और वे दोनों परस्पर निष्कपट भ्रातृ भाव से मिले भी, प्रथम दिवस तो परस्परके कुशल प्रश्न इत्यादि में ही व्यतीत हुआ दूसरे दिन अवसर पाकर चम्पतराय और महाराज पहाड़सिंह जी में जो विशेष बार्तालाप हुआ उसका सारांश यह हैं-

चम्पतराय जी ने कहा, काकाजी साहब इधर जो कुछ हुआ सो हुआ मैंने जो कुछ किसी कारण वश आपका अपराध किया उसके लिये क्षमा मांगता हूं सो कृपा करके प्रदान कीजिये और अब मेरी बिनय पर ध्यान दीजिए महाराज ! मुसल्मान इस समय जैसा कुछ उत्पात कर रहे हैं सो तो किसो पर अप्रगट नहीं है। आर्य्य धर्म्म का सर्व नाश करना ही इनका संकल्प है इस हेतु धर्म्म के रक्षक बीर राजपूत ही इनके हृदय में अधिक सालते हैं

निदान राजपूत वंश को ही समूल नष्ट करना इनका गाढ़ अभीष्ट है। जैसा कि स्पष्ट देखने में आता है क्या जाने एक दिन हमलोगों पर भी इनकी कुदृष्टि पड़े इसलिये प्रथम से ही सन्नद्ध हो बैठना उत्तम है। महाराज जिस पुरुष के द्वारा निज मातृ भूमि और सनातन धर्म्म की रक्षा हो उसके समान धन्य अन्य पुरुष संसार में नहीं है। ऐसे ही पुरुष का जन्म लेना संसार में सार्थक है।

तिसपर भी ईश्वर ने आप को इस देश का स्वामी बनाया है और इस देश के भरण पोषण का भार आपके शीश पर धर कर इसकी उन्नति अवनति भी आपके ही हाथ दे रक्खी है। मैंने यद्यपि यह दृढ़ संकल्प कर लिया है कि दुराचारी यवनों को भली भांति छकाऊंगा तब भी एकाकी मनुष्य के किए कुछ भी नहीं हो सकता। इस हेतु बारंबार प्रार्थना करता हूं कि कृपा कर इस दास की आप भी इस धर्मकार्य्य में सहायता करने को कटिबद्ध होजाइए। यवनों के विरुद्ध अस्त्र ग्रहण कर सन्नद्ध रहिए। केवल भीड़ परने पर मेरी सहायता का वचन दे दीजिए और मेरे रहते आप किसी बात की चिन्ता न करें।

राजा महाराजाओं में एक तो स्वाभाविक सद्गुण और बीरता होतीं है फिर ऐसे समय में जब कि चतुर्दिक धर मार ही की ध्वनि प्रतिध्वनित होती थी तिस पर भी राव चँपतराय जी का बीरत्वोत्तेजक व्याख्यान सुन कर महाराज पहाड़सिंह जी के हृदयसिन्धु में भी सनातन गौरव की लहर लहराने लगी धर्म रक्षा, देशभक्ति, प्रजा

पालन इत्यादि वीरोचित गुणों ने भी चारों ओर से वर्षा की नदियां सी बढ़ कर महाराज के हृदय को और भो गँभीर कर दिया। धन्य है यह सद्गुण! यदि राजा महाराजाओं में भी न हो कि जिन्हें ईश्वर ने सर्वोच्च पद प्रदान करके अगणित जीवों का स्वामी बनाया है तो किस में हो। ईश्वर विचारशून्य नहीं है। वह जो वस्तु जैसी जिस कार्य के निमित्त निर्माण करता है उसको प्रायः स्वाभावतः ही आवश्यक सब बातें स्वयं दे रखता है। अब हमारे पाठक महाशय कदापि यह शंका करें कि राजाओं में जो प्रायः कादरता, अधर्माचार, दुष्ट वृत्ति, प्रजा पीड़न, मद्यपान इत्यादि दोष पाए जाते हैं इसका क्या कारण है, तो अपनी शंका के निवारणार्थ आपको यह विचारना उचित होगा कि रक्त मांश गठित शरीरधारी मनुष्य मात्र षट् रिपुओं के अधीन हैं और तद्रूप उनसे जीते गए मनुष्य उनके सहकारी भी अपनी घात के विचार में रहते हैं। कृपापूर्वक इस विषय में मेरा जो विचार है उसे भी श्रवण कर लीजिए।

ईश्वर आत्मा स्वरूप है और वह बुद्धि द्वारा प्रकाश करके मनुष्य को उसी के सहारे पर छोड़ देता है। फिर बुद्धि द्वारा भले और बुरे का निर्णय करके आचरण करना यह मनुष्य का काम है, जैसा आचरण होता है तद्वत् परिणाम होता है, इसमें ईश्वर को दूषण देना वृथा है। राजा महाराजा अथवा धनिक पुरुषों में किसी प्रकार के अवगुणों का होना स्वार्थपर, लंपट दुराचारी मनुष्यों के कु-

कृत्यों का फल होता है। वे आजन्म अपनी जीविका चलाने और उसद्वारा निज इच्छित दुराशाओं को पूर्ण करने मात्र के अभिप्राय से कुमार अवस्था में ही एक महत्-पुरुष को धर्म भ्रष्ट करके उसके आधीन अगणित जीवों को कष्ट पहुंचाते हैं। दुष्ट कर्मचारी निज स्वार्थ साधन के लिये उन्हें अविद्वान रखते हैं। ऐसे मनुष्य जो कुछ करें सब थोड़ा है। आजकल विशेषतः क्षत्री जाति में और सामान्यतः उसी के प्रतिबिम्ब स्वरूप प्रत्येक भारतवासी के हृदय पर जो फूट वा परस्पर के विरोध का अधिकार देखा जाता है, उसके कर्ता वही लंपट लोग हैं जिन्होंने हमारे पूर्व पुरुषाओं के हृदय क्षेत्र में फूट का बीज बोया और अब हम उसके फल से क्या २ यातनाएँ भोग रहे हैं सो सर्वसाधारण पर अप्रगट नहीं है। वर्तमान समय में भी कतिपय दुष्ट कर्मचारी अपने कुकर्म से नहीं चूकते। जहां उन्होंने अपने स्वामी को तनिक भी विषय लोलुप या असावधान पाया कि प्रजा को उजाड़ कर रियासतों को तबाह कर देते हैं। यदि कोई उसपर लक्ष करता है तो उसका प्राण लेने में तत्पर होते हैं इत्यादि इस प्रकार पशु कर्म करते हुए वे भी अपने को मनुष्य होने का दावा करते हैं, किन्तु खेद का विषय है कि हमलोग अब भी अपनी नींद को नहीं छोड़ते, दीवान साहब, मुंसरिम साहब, लालाजी कक्का को ही अपना सर्वस्व मान कर उनकी गोद में शीश रक्खे हुए बेखबर सोते हैं और वे दुष्ट गले पर छुरी चलाते हैं। नौकरों के भेष में सर्वस्व

के स्वामी बने बैठे हैं।

महाराज पहाड़सिंह ने विचार किया कि यद्यपि चम्पतराय जी का कथन वास्तव में सत्य और कर्तव्य है किन्तु मन्त्रियों से परामर्ष किये बिना कोई कार्य्य अपने आपकर बैठना उचित नहीं क्योंकि मनुष्य को निज स्वार्थ-परता वश तथा चित्त के किसी विशेष उद्वेग वश अपनी भूल आप दृष्टिगोचर नहीं होती और कहा भी है कि—"बिना बिचारे जो करे सो पाछे पछताय" इत्यादि मन में इसी प्रकार तर्क वितर्क करके महाराज ने उत्तर दिया कि राजा साहब आपकी शिक्षा मुझे शिरोधार्य्य है कल प्रातःकाल हम और आप अपने इष्ट बान्धवों सहित इकट्ठे भोजन प्रसाद करेंगे और उसी समय परस्पर मिल कर परामर्ष करके नियमित कार्य्य के लिये उपाय निश्चय करेंगे।

राव चम्पतराय जी के चले जाने पर महाराज पहाड़-सिंह जी ने अपने विश्वासपात्र मंत्री, वज़ीर नसीमुद्दौला को बुला कर अपने और चम्पतराय जी प्रति समस्त आ-लाप का सारांश कह सुनाया। परस्पर दो बीर क्षत्रियों के मेल की बात सुनकर नसीमुद्दौला मनही मन कांप गया और कृत्रिम हास्य मुख से बोला कि हुजूर आली बुलंद इकबालहू आलीजाह का फर्माना बहुत दुरुस्त और बजा है। तत्पश्चात् कुछ और भी चापलूसी की झोंक से बोला कि क्या हुजूर आली को यह बात भूल गई है कि यह चम्पतराय हुजूरही का एक छोटा सा खादिम जा-

गीरदार है चुनांचे यह हुजूर के ही रिआया में डांके दे दे कर किस कदर बढ़ गया है क्या जाने मिल कर किसी दिन बड़ी भारी चोट कर बैठे। वल्लाह इस चम्पतराय ने हुजूर ही का नमक खाया और हुजूर के हो इताअत से इसने सर उठाया तोबः ऐसे इन्सान पर ईमान लाना महज़ नादानी के सिवाय और क्या कहा जा सकता है। कुसूर माफ़ हो जो कुछ राय नाक़िस में आया बन्दे ने कह सुनाया आइन्दः राय आलीजाह पर मुनहसर है ग़रीबपर्वर सलामत कमतरीन का तो ऐसा ख़याल है कि हुजूर ने उसे कल सुबह को दावत का पैग़ाम देही रक्खा है बस कल ही उसका काम तमाम किया जावे ता कि हमेशः के लिये सर से बला दूर हो। पाठक महाशय देखिये तो इस दुष्ट नसीमुद्दौला ने कैसा कुकर्म किया कि जिसका परिणाम यह हुआ कि चम्पतराय और पहाड़सिंह दोनों में तथा उनकी संतान में भी सदैव के लिये विरोध का अंकुर जम गया। अफ़सोस! क्यों न हो विजातियों से मित्रभाव रखने तथा उनपर विश्वास करने वाला क्या कभी भी सच्चे और शान्त सुख का अनुभव कर सकता है? कदापि नहीं। क्योंकि विजातियों पर विश्वास करने वाले पुरुष के दुष्कर्म जिन्हें कि वह निज स्वार्थपर कपटी मित्र की मंत्रणानुसार करता है निरंतर उसे संतप्त किया करते हैं और इसी कारण वश वह निस्तेज हो कर नित नव श्लील कल्पनाओं में मुग्ध रहता हुआ उद्विग्न रहा करता है। यह जो कुछ

कहा गया है मन बुद्धि और आत्मा से सम्बन्ध रखता है, शरीर की स्थूलता और उज्वल वस्त्रों से इसका कोई प्रयोजन नहीं है।

इधर राव चम्पतराय जी ने वह रात्रि ज्यों त्यों करके व्यतीत की। प्रातःकाल होते ही स्नान ध्यानादि नित्य क्रिया से निश्चिन्त हो कर अपने पितृव्य सगे भाई भीम जी को साथ ले कर महाराज पहाड़सिंह का संदेसा पातेही ज्योनार के लिये वे क़िले को पधारे।

ज्योनार होजाने पर जब पान बीड़े की बारी आई तो पानों की रकाबी राव चम्पतराय जी के सम्मुख रख दी गई परन्तु उनके सुहृद भाई भीम जी ने वह रकाबी अपने पास उठा ली और अपने पान रावजी को दे दिये और नसीमुद्दौला की तदबीर पर पानी फेर दिया। जब वहां से बिदा होकर चम्पतराय जी अपने ख़ेमे में आये तो भीमजी पर अत्यन्त कुपित होकर पान बदलने का कारण पूछने लगे तब भीम जी ने भी नसीमुद्दौला की बुद्धिमत्ता का सारा हाल कह सुनाया जो कि उन्हें किसी लालची भेदुवे द्वारा ज्ञात हुआ था जिसे सुन कर राव जी के भी कान खड़े हो गए और उन्होंने आज्ञा दी कि इसी वक्त यहां से कूँच किया जाय। निदान राव जी की आज्ञा पाते ही भाई भीमजी ने बम बोल दी और दम भर में वह जनपूर्ण पड़ाव का मैदान एकदम खाली हो गया। मुंशी श्यामलाल कृत बुन्देलखण्ड की उर्दू तवारीख में लिखा है कि महाराज पहाड़सिंह ने इसी प्रकार

कई बार राव चम्पतराय जी पर किये थे।

जब यह बात राव चम्पतराय जी की माता ने सुनी कि राजा पहाड़सिंह व्यर्थ मेरे पुत्र के रक्त का प्यासा है तो वह आप स्वयं चम्पतराय जी के पास गईं और उन्हें समझाने लगीं कि हे पुत्र यद्यपि तू स्वयं चतुर है परन्तु तब भी एक बात कहती हूं सो सुनले इस समय तू दलबल इकट्ठा करके बीर और राजकीय कर्म करने पर उद्यत हुआ है परन्तु राज्य का मुख्य अंग नीति है अतएव नीति में बिदुर जी का बचन है कि "सब नीतन की नीति यह राज रंक जो कोय। समय देख के अनुसरे अन्त सुखी वह होय" सो हे पुत्र इस समय तेरे दो शत्रु हैं इसलिये अब तुझे अपने प्रबल शत्रु सम्राट का आश्रय लेना कर्तव्य है वस्तुतः तेरे प्राण बचना कठिन है।

चाणाक्य ने कहा है कि 'मात, पिता, गुरु, राज के इनके वचन प्रमाण'। इनकी आज्ञा भंग करि दुष्ट मनुष्य सो जान॥ ऐसा विचार कर राव चम्पतराय जी ने उस समय के वर्तमान चन्द रोज़ा बादशाह दारा-शिकोह को एक प्रार्थना पत्र लिखा। दारा शिकोह भी जो उस समय किसी कारणवश क्षत्री जाति का पूरा प्रेमी था चम्पतराय जी का प्रार्थनापत्र पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और बड़े आदर से उसने उन्हें शाही दरबार में बुलाया और दरबारियों में आसन दे कर उन्हें कुम्हारगढ़ के किले पर भेजा। ईश्वर अनुकूल था इसलिये राव जी को वहां शीघ्रही विजय प्राप्तहुई निदान बादशाह ने भी इस

वीरता के पारितोषिक में उन्हें जिला कौंच जो उस समय १००००० की तहसील थी, तीन लाख सालाना खिराज पर जागीर में दिया। किन्तु शान्ति का सुख चम्पतराय जी बहुत दिन न भोग सके। एक समय जब कि यह सम्राट की आज्ञानुसार किसी कार्य्यवश दिल्ली में थे तो पहाड़सिंह जी ने अपने एक ऐयार द्वारा कोई वस्तु विशेष शाही महल से चुरवा कर इनके डेरे में डलवा दी और जब उधर उस वस्तु की खोज हुई तो आपने बादशाह से अर्ज की कि गो जहांपनाह ने चम्पतराय पर ईमान लाकर उसे जागीर देकर उसका रुतबा बढ़ा दिया है मगर वह ऐसा शख्स नहीं है कि अपनी कमीनी आदत से बाज़ आवे इसलिये मुझे उसीपर शक होता है। निदान जब खोज की गई तो वास्तव में वह वस्तु चम्पतराय जी के ही यहां पाई गई। इस से नाराज होकर बादशाह ने दो हुई जागीर ख़ालसा करली इधर चम्पतराय ने भी इस आपत्ति नागहानी से दुखी होकर पुनः अपने जीवनाधार जङ्गल पहाड़ों का आश्रय लिया।

"एक ओर से बादशाही लश्करों की रपेट, दूसरी ओर से प्रबल पहाड़सिंह की दपेट। अब चम्पतराय जी को चतुर्दिक आपत्तियों का समूह नज़र आने लगा। एक दिन जब कि वे जङ्गल में विश्राम कर रहे थे इनपर बादशाही सेना ने आक्रमण कर दिया अस्तु रावजी तो रानी सहित एक तरफ़ भाग निकले, साथ वाले सिपाही और परिकर के मनुष्य भी अपनी २ जान बचा कर नौ

दो.ग्यारह होगए किन्तु इनका एक षोड़षवर्षीय युवा पुत्र जो उस समय पास ही तालाब में जल क्रीड़ा कर रहा था अपनी जगह से न हटा और अपनी ओर घुआं धार यवन दल बद्दल को आते देख जल क्रीड़ा त्याग कर रक्त क्रीड़ा करने को उद्यता हो गया परन्तु एक बालक हजारों का सामना कब तक कर सकता है निदान दस पांच यवन वीरों ने मिल कर अपने हाथ साफ़ किये। उक्त बालक सारवाहन को मार कर इस सेना ने क्या कार्य्य साधन किया सो तो भगवान जाने किन्तु इसके माता पिता का हृदय अवश्य निरंतर के लिए शोकातुर हो गया। अपने स्वार्थ साधन के लिये दूसरे को दुःख देने वाला मुनियों से राक्षस कहा गया है किन्तु निस्वार्थ निष्प्रयोजन ही किसी निर्बल पर बल जनाने वाले को क्या कहें उसका हृदय कैसा होता है और वह किस पद के योग्य है, सो हम नहीं जानते।

पुत्र वध का सम्वाद सुन कर राव चम्पतराय जी और उनकी रानी की बुरी दशा होगई। पुत्र शोक से हृदय दग्ध होजाने के कारण उन्हें अनर्निशि हाय २ करते व्यतीत होता था। राय जी को संसार शून्य दीखने लगा सब कामों की ओर से उनका चित्त हट गया और इसीसे अब सैन्य बल भी शनैः २ न्यून होने लगा। इधर रावजी को दश मनुष्यों में बैठना या किसी से वार्तालाप करना स्वयं असह्य था। इसी अवस्था में एक दिन जब कि वे केवल रानी के सहित ककरकचनए के पहाड़ पर विश्राम

कर रहे थे कि हठात चारों ओर से बादशाही घुड़-सवारों ने पहाड़ को आन घेरा और कुछ मनुष्य इन्हें बन्दी करने के निमित्त पहाड़ पर चढ़ने लगे। यह आपत्ति देख रावजी के चित्त में यही समाई कि बस इन दुष्टों के करतलगत होने से प्राण त्यागनाही भला है। ऐसा विचार कर निज इष्टदेव का स्मरण करते हुए रानी को पीठ पर बांध वे पहाड़ पर से कूद* पड़े और पास वाली छोटी सी पहाड़ी पर जो कि उक्त पहाड़ से करीब दो फरलांग के अन्तर पर है जा पहुंचे। अस्तु शाही सवार जो इन दोनों पहाड़ियों के बीच में खड़े थे चम्पतराव जी को ऊपर से जाते हुए देखकर कह उठे वल्लाह क्या ही गज़ब की बात है यह चम्पतराय इन्सान है या परिन्द या कोई देव है भई इन्सान से लड़ना लड़ाना तो हमारा काम है, देव से लड़े हमारी बला। शुक्र है अल्लाह का कि ऊपर का ऊपर भाग निकला वरना, जिसमें इसक़दर ताकते ग़ैब है क्या अजब कि हम सब को योंही निगल जाता।

इस समय रानी को गर्भ था, इसके छः महीने पश्चात् मोरपहाड़ी के जङ्गल में जो कटेरा से तीन कोस

---

* चंपतराय जी के एक पहाड़ पर से दूसरे पहाड़ पर उड़ जाने के विषय में बहुतसी दन्त कथाएं सुनी जाती हैं। कोई कहता है किसी सँपेरे ने इन्हें सर्प विशेष का पोरवा खिलाया था। कोई इन्हें वरदा-निक बतलाता है परन्तु सत्यता इसी में प्रतीत होती है कि वन में फिरते हुए किसी योगी राज ने इनकी दशा पर दया करके इन्हें कोई ऐसी जड़ी खिला दी थी कि जिससे इनके शरीर में एक अलौकिक शक्ति आ गई थी।

दक्षिण है छत्रसाल नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। छत्र-साल का वय जिस समय छः मास का हुआ तो चम्पतराय ने अपनी रानी को नैहर भेज दिया और आप अकेले ही रहे। जब छत्रसाल की आयु ४ वर्ष की होगई तो इनकी माता पुनः रावजी से आन मिली और तब से दोनों सिंह सिंहनी बन में स्वच्छन्द विचरते हुए समय व्यतीत करने लगे।

यद्यपि चम्पतराय जो किसीका कुछ अपराध व अनर्थ न करते थे केवल शान्ति सुख लाभ कर रहे थे, परन्तु प्रथम उपद्रव करके फिर संतोष धारण कर शांति सुख की अभिलाषा करना ऐसाही है जैसे बबूल के वृक्ष से आम पाने की आशा करना किन्तु यह होना असम्भव है। राजा पहाड़सिंह को यह बीर पुरुष निरन्तर कांटा सा खटकता था, इसलिये वे इनके प्राणों की घात में रहा करते थे, दैवयोग से वह दुराशा पूर्ण हुई। पहाड़सिंह जी ने घात लगा कर धामौनी के जङ्गल में इनपर बादशाही फौज का हमला करवा दिया। उस समय रावजोके पास केवल ६० शस्त्र धारी सिपाही थे। इन्होंने भी बचाव का कोई अवसर न देख कर रणक्षेत्र में ही प्राण देना दृढ़ सिद्धान्त निर्णय कर लिया। निदान दोनों ओर से लोहा झड़ उठा राव चम्पतराय जी रानी सहित घोड़े पर सवार तलवार फटकारते हुए मुसल्मान सेना को अपने क्षत्रियत्व और बीरत्व का परिचय देते अगनित यवन बोरों का संहार करने लगे किन्तु एक की औषधि दो

होते हैं। अन्त में एक यवन सरदार ने बगल से आकर राव जो के सर पर तलवार का वार किया और वार भो ऐसा बैठा कि खोपड़ो कानों तक फट गई। दूसरे ने घोड़े के सीने में गोली मारी, तीसरे ने घोड़े का तङ्ग काट दिया और राव रानी दोनों धराशायी हुए। अब तक चम्पत राय कुछ जीवित थे इसलिये रानी जी ने कमर से पिस्तौल निकाल कर राव जो के सोने पर अपने हाथ से गोली मार दो और* कटार से अपना काम तमाम किया और क्षण-मात्र का विलंब न करके पति के साथ वे सत्यलोक को सिधारीं। धन्य है ऐसो वीर कन्या वीर पत्नो, वीर माता और वोर वामा स्वयं वोर पतिव्रता का जहां तक गौरव के साथ स्मरण किया जाय थोड़ा है और विचार करने की बात है कि ऐसी माता के उदर से जन्मा हुआ पुत्र वोर छत्रसाल जो भारतवर्ष का संम्राट न हुआ सो यह भारतवर्ष का दुर्दिन ही था। यदि भारत को स्त्रियां पुनः अपने शुद्धा चरण को ग्रहण करने में तत्पर होजांय तो इस भारत भूमि के पुनः अपनो उन्नत भावी को पहुंचने में बिलंब ही क्या है ?

---

* जिस समय का यह ज़िक्र है वह वक़्तही ऐसा था और रानी साहबा का वीर कर्तव्य सराहनीय है क्योंकि यदि उस समय ऐसा न किया जाता तो प्राण के साथ २ मर्य्यादा के जाने का भी भय था और रावजी को घाव भी ऐसा लग चुका था कि किसी अवस्था में भी उनके जीवन की आशा कदापि नहीं थी।

महाराज छत्रसाल ।

दोहा ।

पद्माकर किन सिंह को कियो राज्य अभिषेक ।
अपने बल मृगराज भौ हन गजराज अनेक ॥

संन् १६४९ ईस्वी, जेष्ट शुक्ल ३ चन्द्रवार संवत् १७०६ शाके १५७१ को "बुन्देलखण्ड केशरी" महाराज छत्रसाल जी ने अपनी वीरमाता कें उदर से यवन साम्राज्य पददलित करके स्वदेश रक्षा कर क्षत्रिय धर्म की चिरस्थायी कीर्ति स्थापित करने तथा सार गर्भित संसार में निज बाहु बल विस्तृत करने के हेतु जन्म धारण किया ।

कवित्त ।

उदय में राजें अग्नि, मंगल, बिराजें जहां बल करे शुक्र शनि सहित विहार है। बुध अरि नाशे रविराहु प्रज को प्रकाशें लाभ करे सुरगुरु अमित अपार है। सत्रह सै छः (१७०६) को विलंबी नाम सम्बत्सर जेष्ट तिथि तीज सित पक्ष सितवार है । शिव के नखत मह वषत वली छत्रसाल लीनो नर नाह नरनाह अवतार है ॥

॥ दोहा ॥

ईश नखत अनुरूप अरु अरथवन्त परनाम।
जन्मपत्र तातें लिखो छत्रसाल यह नाम ॥

महाराज छत्रसालजी वास्तव में सच्चे वीर पराक्रमी और राजाधिराज थे किन्तु जब तक आपने राज्य सिंहासन ग्रहण नहीं किया था, यथावत् उचित रीति से आपका राज्याभिषेक नहीं हुआ तब तक आप को 'महाराज' शब्द से सम्बोधन न करके केवल छत्रसाल अथवा यथासमय अन्यान्य उचित शब्दोंद्वारा सम्बोधन किया जायगा।

छत्रसाल का जन्म शहंशाह जलालुद्दीन महम्मद अकबर की तरह बन प्रान्त में ही हुआ था। छत्रसाल ने जन्म लेतेही कानों से दनादन तोपों और ठां, ठक बन्दूकों का शब्द सुना, माता के अंचल से मुंह निकालतेही धरो, मारो, पकड़ो की बहार, खचाखच तलवारों के आघात से रुधिर प्लावित मृतक व घायल बीरों के शरीरों को ही देखा। इसी प्रकार, घोर, घमासान, जङ्गल, पहाड़ बन्दूक तलवार मार काट की ललकार देखते सुनते छत्रसाल की अवस्था छः मास की होगई।

एक समय जब कि छत्रसाल की अवस्था का सातवां मास प्रारम्भ हुआ था, इनके माता पिता कुछ थोड़े से सिपाहियों सहित पहाड़ों की खोह में भोजन प्रसाद कर रहे थे, और इनके बीर सैनिकगण इधर उधर बिखरे हुए स्वयं अपनी२ प्रज्वलित जठराग्नि के शान्त करने के उपाय

में मुग्ध थे कि हठात शाही जर्रार लश्कर की घूमधार इनके सर पर आ पहुंची, बस फिर क्या था जहां जिसे स्थान मिला क्षणमात्र में सब तीन तेरह होगए, राव चम्पतराय भी रानी सहित उबीनी पीठ घोड़े पर सवार हो कर एक तरफ चल दिए परन्तु वह छः मास का बालक बेचारा छत्रसाल कहां जावे। कोई भी वस्तु संसार में प्राण से प्रिय नहीं ईश्वरीय नियम ही कुछ ऐसा विलक्ष है कि जब प्राणों पर आबनती है तो अपने बचाव के सिवाय अन्य किसी वस्तु का लवलेश मात्र भी स्मरण नहीं रहता। निदान अपने २ प्राण ले कर के सबके सब जहां तहां भाग गए परन्तु छः मास का बेचारा छत्रसाल 'कहां कहां' करता वहां ही रह गया, पर वहां उसको कहां २ कौन सुनता था, वहां तो मुसलमान अश्वारोही, सीना हुमसाते, नेजे चमकाते घोड़ों की बाग उठाते, धरो पकड़ो का रव मचाते चले जाते थे। अनुमान एक हजार घोड़े, कोई छत्रसाल के सिरहाने कोई पैताने, कोई इस तरफ, कोई उस तरफ से निकल गए परन्तु बचा छत्रसाल का बाल भी बांका न हुआ। जब ये लोग एक मील भर निकल गए तो छत्रसाल की कहां कहां अब पुनः सुन पड़ी पाठक महाशय आपने बच्चे की कहां कहां तो सुनी अब ज़रा इसका अर्थ भी सुनिए वह षटमासीय बालक कहां कहां शब्द मय रुदन करता हुआ मानो कह रहा था कि हे दैव कहां तो मैं अपनी माता की गोद में आनन्द कर रहा था और अब कहां पृथ्वी

माता की ऋण मई गोद में असहाय पड़ा हुआ हूं, हे माता तू कहां, क्या तुम्हें इस समय यह भी खबर नहीं है कि हमारा प्यारा बच्चा कहां और हम कहां हैं ? निकटवर्ती मनुष्यो, तुम कहां ? हां, हां जब तुम ने जन्म सघाती मेरे पिता का भी साथ न दिया तो मैं कहां, तुम तो चुपड़ी रोटी के साथी हो परन्तु हे सच्चिदानन्द सर्व व्यापी दीनदयालु परमात्मा और तो सब जहां तहां पर आप कहां, कहां तो ९ मास माता के उदर में रक्षा कर के संसार में जन्म देना, और कहां इस जन शून्य स्थान में रुलाना। लीजिए बालक छत्रसाल की अंतिम प्रार्थना स्वीकार हुई। उसी समय राव चम्पतरायजी का एक साईस जो दो दिन प्रथम पैर में गोली लगजाने से भागने में असमर्थ हो कर किसी खंदक में छिपा हुआ था आ निकला और कहां २ की ध्वनि सुन कर जहां क्षत्रसाल करुणा रस की मूर्त्ति स्वरूप कहां २ कर रहे थे वहां ही आ पहुंचा और उसने छत्रसाल को अपने मालिक का पुत्र पहिचान कर गोद में उठा लिया। इस साईस ने छत्र साल जी का दो दिन पर्य्यंत गूलर इत्यादि वृक्षों का दूध पिला कर पोषण किया तब तक राव चम्पतराय जी भी अपने साथियों सहित वहां आ पहुंचे और बालक छत्रसाल को जीवित पाकर उनके हृदय में जिस प्रकार आनन्द हुआ उसका अनुभव कदापि कोई निज बीती वाला ही कर सकता है, मेरी जड़ लेखनी को उस आनन्द का रूपादर्श करने को सामर्थ्य नहीं है।

तब तो राव चम्पतराय जी ने ऐसे समय में बालक छत्रसाल को अपने साथ रखनाहीं उचित न जान कर रानी से कहा कि 'हे प्रिये। एक बार ठगावे सो बावन बार कहलावे और बार २ ठगावे सो गम्पूनाथ कहावे' अब तुम्हें यही उचित है कि इस बालक को लेकर अपने नैहर चली जाओ यहां तुम्हारा रहना ठीक नहीं है। एक युवा बालक यवन सेना के हाथ से मारा ही जा चुका है और इसको तो अबकी बार साक्षात ईश्वर ने ही रक्षा की है निदान दूसरे दिन रानी जी छत्रसाल को लेकर अपने नैहर चली गईं और छत्रसाल की अवस्था ४ वर्ष की होने पर्य्यन्त वहां ही रहीं।

जब छत्रसाल की अवस्था चार वर्ष की होगई तो इनकी माता इन्हें लेकर पुनः चम्पतराय जी की सेवा में आ उपस्थित हुईं। अब छत्रसाल जी धीमे धीमे चलने, मधुर २ तोतरे शब्द बोल २ कर माता पिता के हृदय को आनन्द देने और स्वयं वीर पिता चम्पतराय जी के मारे हुए शत्रुओं के रुधिर मय मृतक शवों को देख २ कर प्रसन्न होने लगे। छत्रसाल जी, आजकल के लड़ैती ललनाओं की तरह रुधिर को देख कर डर से रुदन नहीं करते थे, वरन किलक कर प्रसन्नता प्रगट करते हुए उसमें लोटने को दौड़ते थे, तोप और बन्दूकों की भयंकर गर्जना सुनकर माता के आंचल में मुंह नहीं छिपाते, वरन चैांक कर ध्यान से चारों ओर देखने लगते मानों उसी शब्द को पुनः सुनने के अभिलाषी हैं। छत्रसाल

जी की माता बड़ीही चतुर और कुछ विदुषी भी थीं, इस लिये इनको—'भैया बाबा आया कान काट लेगा, ऐसी बातों के जिनसे बच्चों के कौमल हृदय पर कादरता का अधिकार हो जाता है सुनने का अभ्यास न होने दिया था वरंच अश्लील कहानियों के बदले उन्हें सच्चरित्र बीर पुरुषों को धर्म निष्ठामय उत्तेजना जनक उत्तमोत्तम वृत्तान्त सुनाया जाता था और प्रसव समय से जो कुछ दृश्य छत्रसाल जी ने देखा सो तो आप पर प्रथम हो प्रगट हो चुका है। तात्पर्य्य यह है कि छत्रसाल के कोमल हृदय पर बीर रस का इस भांति गाढ़ चित्र खचित होगया कि समय आने पर उसने बढ़ कर इन्हें स्वयं अपने ही स्वरूप में लीन कर लिया। यह तो सर्व साधारण पर स्वयं प्रगट है कि बाल्यवस्था में बालक की जैसी शिक्षा होती है या जैसा वह देखता सुनता है वैसाही उसका स्वभाव पड़ जाता है और वह स्वभाव सहस्त्र २ यत्न करने पर भी मरंण पर्य्यंत उसका साथ नहीं छोड़ना। मनुष्य की जैसी २ आयु बढ़ती जाती है समय २ पर वह अपने ही स्वभाव वाले मित्र वर्ग भी खोज लेता है जिससे उसके स्वभाव की वृद्धि में एक प्रकार की सहायता मिलती जाती है। अन्त में वह स्वभाव मनुष्य को अपने ही आकार में लीन कर लेता है और मानव शरीर के नाश होने पर भी स्वभाव उसकी नेकनामी या बदनामी का कारण स्वरूप होकर उसके नाम के साथ कुछ काल तक संसार में स्थिर रहता

है।. इस हेतु बालकों का बनना बिगड़ना माता की ही शिक्षा पर निर्भर है। इस के विरुद्ध प्रायः होता ही नहीं।

इस प्रकार छत्रसाल जी की अवस्था सात वर्ष की होगई तब राव चम्पतराय जी ने इन्हें विद्याध्ययन करौना उचित जान कर ममाने भेज दिया। वहां पहुंचे हुए छत्रसाल जी को केवल २ मास १३ दिन हुए थे कि इनकी सती माता और बीर पिता उपरोक्त रीति से परलोक गामी होगए* मानो छत्रसाल को 'राखपति रखापति' का पूरा २ विश्वास करा गए कि भाई तूने हमसे दगा की थी अब हम भी तुझ से सदैव के लिये बिदा हुए, तू परमपिता परमात्मा और प्रकृति माता की गोद में आनन्द कर।

छत्रसाल जी को माता पिता की मृत्यु का समाचार एक सिपाही से मिला जो कि स्वर्ग रावजी का साथी था और किसी प्रकार प्राण लेकर बच भागा था। उक्त हृदय बिदारक संवाद पाकर छत्रसाल दुखी हुए या सुखी सो पाठक स्वयं बिचार सकते हैं। विचार करने का स्थल है कि भला इस दुख का क्या ठिकाना है कि जिसे पढ़ कर

*कहते हैं कि जब सारवाहन के मारे जाने पर रावचंपतरायजी और उनकी रानी पुत्रशोक से अत्यन्त व्याकुल होकर विह्वल से होगए। तब रात्रि को स्वप्न में क्या देखते हैं कि सारवाहन हाथ में नग्नखड्ग लिए हुए सामने खड़े होकर कह रहे हैं कि हे माते आप धैर्य धारण कीजिए व्यर्थ शोक करने से क्या? मैं पुन: आपकी कुख से जन्म धारण करके दुष्ट यवनों को दमन करूंगा। इसलिये छत्रसाल जी को सारवाहन का ही अवतार मानते हैं॥

पाठकों का हृदय शोकातुर और नेत्र विषादाश्रु पूर्ण होना संभव है। एक सात वर्ष के असहाय बालक के माता पिता का देहान्त होगयां, ऊपर आकाश नीचे पृथ्वी ही उसका सहारा है। ईश्वर ही जानने वाला है कि उक्त संबाद को सुन कर बिचारे छत्रसाल की क्या दशा हुई होगी और उसके दिलपर कैसी कठिन चोट बैठी होगी।

चित्त पर कठिन चोट लगी सो सही परन्तु छत्रसाल कोई साधारण बालक नहीं था यद्यपि इसकी अवस्था उस समय केवल ७ वर्ष की थी किन्तु ईश्वरदत्त इसकी शक्तियां बड़ी ही प्रबल और सब आचरण होनहार थे। छत्रसाल माता पिता का मृतक कर्म करके स्वच्छंद चित्त से प्रकृति देवी को अपनी माता और शर्वशक्ति मान जगदीश्वर को अपना पिता जान कर विद्या ध्ययन में दत्त चित्त होगए और यहां (बुन्देलखण्ड) की प्राचीन प्रणाली के अनुसार पाटी चरनाय के, रामचन्द्रिका तथा कुछ गणित का अभ्यास १३ वर्ष की अवस्था पर्यन्त किया।

पठन पाठन से निवृत्त होकर एक दिन इन्हों ने मन में विचार किया कि मामा के यहां रहना ठीक नहीं इसलिये जाकर अपने घर में ही रहना उचित है। हमारे पितृव्य हमको जागीर में हिस्सा न देंगे ऐसा विचार करना केवल कादरता है। अरे! हम तो वीर पुत्र हैं, हम तो अपने ही बाहुबल से दूसरे का भी अपना कर लेने वाले हैं फिर अपनी ही वस्तु पर अधिकार करना क्या

कठिन है। यदि विचारें कि हमारा सहायक कोई नहीं है सो यह विचार भी व्यर्थ है हमें केवल साहस करना चाहिये सर्व व्यापी ईश्वर अवश्य हमारी सहायता करेगा। जब से छत्रसाल ने अपने खोह में रह जाने और एक विकट अस्वारोहियों का दल ऊपर से निकल जाने पर भी अपने जीवित रहने की कथा सुनी थी तब ही से इनके हृदय में ईश्वर की शक्ति और अस्तित्व पर पूर्ण और दृढ़ निश्चय होगया था और है भी वास्तव में ऐसा ही कि जो ईश्वर पर दृढ़ विश्वास करता है ईश्वर भी सदैव उसकी रक्षा पर कटिबद्ध रहता है। छत्रसाल की उपरोक्त रामकहानी इस दोहे का प्रत्यक्ष और पुष्ट प्रमाण स्वरूप है कि 'वैरागी गज से बचो राम नाम की ओट'।

बस इतने विचार मात्र का विलंब था वहां तो दैव की कृपा से जो लहर हृदय में आई कि चट उसका सांचा तैयार हुआ। धन्य है क्यों न हो सत्पुरुषों के विचार ऐसेही दृढ़ होते हैं और दृढ़ता के आधार पर ही कठिन से कठिन कार्य्य में सिद्धि भी हो सकती है। छत्रसाल अकेले हाथ में तीर कमान, बगल में रामचन्द्रिका की पुस्तक लेकर चल दिये।

छत्रसाल जी को आज हम चार दिन के पश्चात दैलवारे (गांव) के निकट वट वृक्ष की छाया में एक चटान पर बैठे देखते हैं। ममाने से चल कर आज चार दिन से इनपर कैसी बीती सो भगवान जाने क्योंकि इस

समय वही एक मात्र उनका साथी था। परन्तु छत्रसाल जो की खिन्नाकृति से इस समय ऐसा भासित होता है कि यह किसी गूढ़ विचार में निमग्न हैं और साथही इस के यह भी ज्ञात होता है कि इस गूढ़ विचार का कारण भी किसी विशेष आपत्ति का आक्रमण है। होनहार सत्पुरुषों का यह भी एक लक्षण है कि वे किसी आगत वा प्रत्यक्ष आपत्ति से मुग्ध होकर ज्ञानशून्य हो भाग्य को रोने नहीं लगते बरन उस आपत्ति के नष्ट करने की चेष्ठा में उत्तमोत्तम उपायों को सोचते हैं। अनुमान से ज्ञात होता था कि उस समय छत्रसाल जी के पास में पैसा नहीं था और वे क्षुधा से अत्यंत पीड़त थे इसीसे उनके वह विकसित कंजवत् शोभामय नेत्र नीचे और पलाच्छादित होते चले जाते थे किन्तु निराशा, भय, संकल्प, विकल्प, तृष्णा इत्यादि तो साधारण और स्वार्थ साधक पुरुषों के लिये ही भयानक हैं दृढ़ हृदय ईश्वर पर विश्वास करने वाले का ये प्रपंच कुछ भी बिगड़ नहीं सकते। छत्रसाल जी ने कुछ विचारते विचारते ज्योंही ऊपर को गरदन उठा करके देखा तो देखते क्या हैं कि एक दीर्घकाय मनुष्य जिसकी अवस्था अनुमानन ५० वर्ष की होगी, सामने खड़ा हुआ इनको बड़ी गहरी दृष्टी से देख रहा था। यद्यपि उस मनुष्य की आकृति से यह साफ़ २ ज्ञात होता था कि वह शुद्र वर्ण में उत्तपन्न था परन्तु उसका हृदय भी शुद्र है वा नहीं इसका ज्ञान होना कठिन है। जब छत्रसाल ने उसकी तरफ देखा तो वह अत्यन्त

मधुर वाणी से बोला—

'भैया अपुन को आव और इतै कैसे विराजे हौ,' इसका छत्रसालजी ने कुछ भी उत्तर न दिया। इस लिये वह पुनः बोला 'कि भैया साव अपुन अकेले हौ कै कोउ अपुन के सङ्ग में है, अपुन कहा सें आये हौ और कहां ख्वां जाने है। महिरबानगी करके ताबेदार के घरै चलवो होबै सो जो कछू सूखी रूखो है सो हाजिर है दिन भर आराम करो जावै फिर बिहाने जांख्वां हुकुम हुहै मैं संगै जाकै पठवा आहौं। मन की गति जानने में मन बड़ा ही चतुर है। उक्त शूद्र के प्रेम भरे वचन सुन कर छत्रसाल जी ने मनही मन उसका आतिथ्य स्वीकार कर लिया और प्रकाश में उत्तर दिया कि भई मैं संसार में अकेला ही हूं, ईश्वरही मेरा साथी है मैं महेवा को जानो चाहता हूं। महेवा का नाम सुनतेही शूद्र की मुखाकृति से सहसा करुणा, शोक और आनन्द के चिन्ह प्रगट होने लगे, किन्तु इन सब से आनन्द और आश्चर्य्य बलवान था। उसने बहुत उत्सक होकर पूछा 'भैयासाव अपुन को ठाकुर आव, अपुन के बाप कौ का नाव है।' यह सुन छत्रसालजी ने उत्तर दिया कि मेरे पिता का नाम चम्पतराय था मैं उन्हींका छोटा पुत्र छत्रसाल नामसे हूं।

चम्पतराय जो का नाम सुनतेही शूद्र ढांढ़ मार कर रो उठा, बिलख २ रोते हुए चम्पतराय जी का गुणगान करते २ छत्रसाल जी के पैरों पर गिर पड़ा। इसपर

छत्रसालजी के कमल नेत्रों से भी असुधारा चल निकली, कुछ देर में सम्हल कर शूद्र बोला कि 'राजा साहब अपुन तौ हमारे अन्नदाता आव मैंने तो जनम भर राव साहब की सेवा करी है जादेह लौ आपई की आय। निदान छत्रसालजी भी उसका सच्चा प्रेम ताड़ गए और बिना कुछ कहे सुने उसके पीछे होलिये। उक्त शूद्र ने छत्रसाल जी को दो दिन पर्य्यंत बड़े प्रेम से रक्खा और तुरंत एक घोड़ा खरीद करके उसपर उन्हें सवार करवा कर आप साथ में जा के उन्हें महेवा पहुंचा आया।

छत्रसाल जी महेवा में पहुंच कर अपने पितृव्य सुजानराय के यहां गए, चरण छू कर प्रणाम किया और हाथ जोड़ कर खड़े होगए। यह चरित्र देख कर सुजानराय किं कर्तव्यविमूढ़ होकर रह गए मन ही मन में विचार करने लगे, हैं! यह कौन है? मैं इसका कैसा चाचा? यह गोपालराय* है नहीं। रतन साह है या नहीं, अङ्गदराय देवगढ़ में है और बिचारे शुशील शारवाहन का तो स्मरण करतेही हृदय फटता है वह तो बिचारा इस संसार में ही नहीं है। हां यह चम्पतराय का छोटा लड़का तो नहीं है जो ममाने में था। यहां तक विचार किया ही था कि छत्रसाल ने स्वयं अपना नाम तथा सब विधि ब्योरा कह सुनाया। तब तो सुजान राय के भी आंसू बह निकले और प्रेम से गद्गद होकर छत्र-

---

* चंपतराय जी के गोपालराय, रतनसाह, अङ्गदराय, शारवाहन और छत्रसाल यह ५ पुत्र थे।

साल को गोद में बिठाल सिर पर हाथ फेरते हुए वे भाई चम्पतराय जी की सराहना करने लगे।

इस समय से अब छत्रसालजी आनन्द पूर्व्वक अपने चाचा सुजानरायजी के पास रहने लगे। इनके पठन पाठन का सिलसिला यहां भी ठीक२ चला गया। इन तीन वर्षों में इन्होंने कुछ नीति और काव्य पढ़ा। इसके साथही तलवार से काट करना, नेजा चलाना, बन्दूक से निशाना मारना, घोड़े पर चढ़ना इत्यादि वीर कर्म भी इन्हों ने सीखे। कहा जाता है कि इनकी कमान से छूटा हुआ तीर उस कौमार अवस्था में भी आधे मील पर्य्यंत जाता था पिस्तौल के वार में तो अच्छे पुराने २ खिलाड़ी भी इन्हें अपना उस्ताद मानते थे। यह बिनौट में भी बड़े चतुर थे। बिन्नौट का खेल भी ऐसा विचित्र होता है कि इसको जानने वाले एक आदमी का दस वीर शस्त्रधारी कुछ भी नहीं कर सकते, तात्पर्य्य यह है कि एक तो छत्रसाल जो स्वाभाविक ही बीर थे फिर सज्जन सुजानराय की शिक्षा से १४ वर्ष की अवस्था में उस समय की प्रचलित सब प्रकार की अस्त्रशास्त्र विद्याओं में निपुण और दक्ष होकर एक उत्तम बीर बालक होगए।

छत्रसाल पढ़ लिख कर तथा शस्त्रविद्या सीख कर निश्चिंत हुए। काम करने से सब अवयव थक कर स्थिर हो जाते हैं। परंतु मन कदापि स्थिर नहीं रहता। उसे तो कुछ न कुछ उधेड़ बुन होना ही चाहिये, जहां जरा भी काम से छुट्टी पाई कि नाना प्रकार के संकल्प विकल्प

उठने लगते हैं पढ़ने लिखने से अवकाश पाय छत्रसाल का मन भी कभी इधर जाता कभी उधर, कभी इन्हें भाई शारवाहन के अन्याय से मारे जाने का स्मरण कराता कभी चम्पतरायजी की आफ़तों का चरचा चलाता, कभी शाही लशकरों की गप्पें सुनाता कभी बीरता और वीरोचितकर्मों का चित्र खींच कर इनकी आंखों के सामने लाता, परन्तु भय, निराशा, अधर्म और अन्याय का नाम न लेता! क्यों न हो सत्पुरुषोंमन भी तो सत्मन होनाआवश्यक है।

अब छत्रसाल बालक नहीं हैं। किन्तु पूर्ण युवा भी तो नहीं हैं। प्रिय पाठको यदि कोई स्त्री होती तो हम उसे इस अवस्था में वयःसन्धि नायिका लिख कर सम्बोधन करते तो क्या छत्रसाल जी को भी वयःसन्धि नायक करके लिखें? नहीं यदि आपकी सम्मति हो तो छत्रसाल जी को बीर छत्रसाल के नाम से सम्बोधन किया जावे तो अच्छा होगा।

बीर छत्रसाल एक तो स्वतः बीर छत्रधारियों के लक्षणों से भूषित होकर स्वरूपवान थे अब इनके रूप सनद पर मदन नृपति की थाप होने से इनका बला स्वरूप एक लावण्य मई दिव्यमूर्ति बन गया, वह काम की अलौकिक लालित्य मई लालिमा उनके रोम २ से झलक देकर देखने वालों का चित्त चुराने लगी या छत्रसालजी का ऐसा दिव्य स्वरूप होगया जिसे आप अंग्रेजी में 'लेडी किलर' (Lady Killer) कहते हैं। परन्तु अन्तर

इतना था कि आजकल के नौजवानों की तरह सर में तेल डाल कर कंघी से एलवर्ट फ़ेशन के वाल सम्हार उम्दा कोट बूट अचकन चपकन पहिन कर छड़ी के सहारे लचकते हुए चलते इधर उधर गलियों मेलियों में नज़ारे मारते हुए चलना इन (छत्रसाल जी) को नहीं आया। यदि यह प्रश्न किया जाय कि क्यों नहीं? तो उसका साफ़ २ यही उत्तर है कि उन बिचारे ने इस विषय को देखा सुनाही नहीं था। परन्तु इन सब उपलक्षणों के स्थान में बीर छत्रसाल जी के नेत्रों में तेज शान्ति, संकोच और गुरू जनों की लज्जा से नीचा होना आया, मन में कुत्सित कल्पनाओं के स्थान में निरन्तर श्रेष्ट विचारों में लगना आया, हृदय में ईश्वर प्रति दृढ़ विश्वास, हाथों में कलम के स्थान में तीर कमान और तलवार आई, हृदय में खेल को हार जीत के स्थान में यवन संहार की ध्वनि आई। यौवन के आते ही छत्रसाल जी की क्रमशः सब बातों का परिवर्तन होगया और इसीसे उपरोक्त कथनानुसार छत्रसाल का नाम अब बीर छत्रसाल पलटा।

बीर छत्रसाल अब बीर वेष धारण किये मत्थे पर जठा बांधे मूंगिया मिरजई पहिने जांघिया चढ़ाए हुए, पांव में चढ़ौवा बुन्देलखण्डो जूना, कमर में पेशकब्ज़ तलवार कुल्हाड़ी और सांक इत्यादि बांधे, कांधे पर कमान हाथ में बन्दूक और बान लिये हुए अहिनिशि जङ्गल पहाड़ों में शिकार खेला करते पर इनका मन यवनदल का ही शिकार करने में मस्त था।

एक दिन बीर छत्रसाल जी ने अपने मन की बात काका जी से निवेदन की कि मेरा मन निरन्तर इसी चिन्ता से व्यग्र रहता है कि किसी प्रकार दुष्ट यवनों को उनकी दुष्टता का बदला देना चाहिये और मैं अपने मन के बचनों में बँध गया हूं। क्या आप भी इस चरण सेवक का साथ देंगे? इस प्रकार छत्रसाल जी की वार्ता सुन कर सुजानराय मन ही मन कांप गए कि हाय क्या अनर्थ होनहार है इस लड़के को क्या सूझी जो इसने कुछ उपद्रव किया तो न जाने क्या हो और स्पष्ट में उत्तर दिया कि बेटा तुम बालक हो तुम्हारा मन भी बालक है तथा कोमल है और कोमल वस्तु तनिक सी वायु लगते ही चारों ओर घूमती है अस्तु क्षणिक झुकाव कुकाव नहीं कहा जाता, बेटा घबड़ाओ न मन-मानी कर बैठने का परिणाम केवल पश्चाताप होता है। देखो तो सही अपने पास फ़ौज नहीं बीर नहीं तरकश में तीर नहीं भला ऐसे भी कहीं बादशाहों से बदला लिया जा सकता है और भी सुनो मन बड़ा चंचल है मन के अनुयायी होने वाले मनुष्य निरंतर दुःख उठाते हैं और इसको वश में करने वाले शांति सुखलाभ करते हैं और संसार में सुख भोगते हैं। शांति और संतोष ईश्वर का स्वरूप है और चंचलता माया का। इस हेतु मन की आज्ञा में चलना और इसके फेरे में पड़ना केवल मूर्खता है।

काका जी सुजानराय की उपरोक्त शिक्षा को सुन-

कर वीर छत्रसाल ने अपने मन से कुछ मानसिक गोष्टी करके प्रत्युत्तर दिया कि काका जी साहब आपकी शिक्षा वास्तव में विशेष सारांशमय है किन्तु प्रत्येक विषय के निमित्त विशेष समय और विधि भी नियत हैं और काल और विषय का उचित ज्ञान न होने से ही कोई कार्य्य ठीक नहीं होता, इसी कारण आधुनिक अल्प ज्ञानी पुरुष शास्त्र वा ईश्वर को दोष देते हैं। अपनी भ्रम मय बुद्धि को नहीं। मेरा तो मूल सिद्धांत यों है कि मनुष्य के शरीर में आत्मा सत्स्वरूप है अतएव मन में जिस कार्य्य के अनुसंधान करते समय आत्मा बाधा दे वह अधर्म वा अकर्तव्य है, और उसी को मन के आवेग से उत्पन्न हुआ जानिये और जिस कार्य्य के अनुसंधान करते वा उसके विधान को स्मरण करते समय आत्मा दृढ़ होकर शाक्षी दे वही (कार्य्य) धर्म वा कर्तव्य है और उसी कार्य्य के करने में मनुष्य का श्रेय भी होता है और उसे उत्तम फल प्राप्त होता है। आत्मा द्वारा प्रेरित मन के संकल्पित कार्य्य को साक्षात ईश्वर की ही आज्ञा जानना चाहिये। इसी प्रकार कहते २ छत्रसालजी के मन में नजाने क्या समाई कि वह तुरन्त उठ खड़े हुए और अपना शिकारी सामान लगा कर चल दिये। और गांव से निकल कर पूर्व प्रांत के जङ्गल में चले गए और वहां मस्त मन के साथ यहां वहां घूमने लगे। उसी समय दैवयोग से मौत का मारा एक हिरण छत्रसालजी के क्रोध मय प्रज्वलित नेत्रों के सन्मुख आ पड़ा दोनों की आंखें

प्यार हुई। इधर बीर छत्रसाल ने धनुष पर बाण चढ़ाया और एकही बाण में हिरण के प्राण लेलिये। बीर छत्रसालजी हिरण को मार कर। कंधे पर लेकर घर की ओर फिरे। फिरते २ सायंकाल तक मकान आ पहुंचे। दरवाजे पर बैठे हुए सुजानराय जी के सम्मुख हिरण को डाल दिया और दहना पैर हिरण की पीठ पर रख कर दोनों हाथों से पकड़ कर उसके सींग उखाड़ लिये और काका जी के सामने फेंक कर हाथ जोड़ कर निवेदन किया कि क्या आप मुझे अब भी बालक समझते हैं? अधिक क्या इसी से मेरे मानसिक तथा आत्मिक बल का परिचय कर लीजिये। मैं जो कुछ प्रतिज्ञा कर चुका हूं उसे अपने जीवन पर्य्यंत छोड़ने वाला नहीं, मैं तो इस शरीर को अपनी प्रतिज्ञा के अर्पण कर चुका हूं और आपकी चरणों की कृपा से यवन दल को पद दलित करके ही आपके नाम को उज्वल करके तब आपके चरणों के दर्शन करूंगा अन्यथा नहीं। यों कहकर बीर छत्रसाल जी वहां से चल दिये। बहुतों ने समझाया बुझाया दीवान सुजान रायजी ने भी बहुत कुछ ज़ोर जनाया परन्तु अपनी बात का किसीने उत्तर तक न पाया और इसी से निराश होकर सब बैठ रहे और वीर छत्रसाल प्रकृति देवी की गोद में खेलते किधर गए सो जगनियनता परमेश्वर ही जाने।

लीजिये इस बात की चरचा अब सारे गांव भर में फैल उठी रात में जहां देखिये तहां घर घर यही बात

सुनाई देती थी। कोई सुजानराय को अपराधी ठहराता कोई छत्रसाल की लड़क बुद्धि बतलाता, कोई भाग्य की प्रशंसा के गीत गाता। निदान सब लोग अपने २ मानसिक भावों के अनुसार बात में से बात निकालते हुए उसी पर कुछ तुर्रा भी बांधते हुए मनमानी बातें करते थे और कोई कोई तो सौगंद खाकार बीर छत्रसाल के भविष्य का वही फल भी वर्णन करते थे। रात्रि भर तो यह खबर महेवा में हो रही प्रातः होतेही औरतों ने गांव के बाहर जाकर नवीन २ युक्ति मई कहानियों के रूप में एक दूसरी से बाई बाई कह २ के छत्रसालजी के रिसा जाने की वार्ता करते हुए पथिकों द्वारा निकट वर्त्ती ग्रामों में इस चर्चा का सिलसिला लगा दिया। इस चरचा ने सब स्थानों में पहुंच कर सब के मन की थाह ली, परन्तु चम्पतरायजी के साथियों ने इस चरचा का अधिक आदर किया और सुनते ही कोई बीर छत्रसाल के मनाने को कोई समझाने को और कोई २ इनके साथ अपने भाग्यको परीक्षा करने को छत्रसाल जी की खोज में निकल पड़े। समझाने बुझाने और मनाने वाले तो अपना २ काम पूरा करके 'आग जाने लुहार जाने' कहते हुए अपने २ घर आ बैठे और साथ देने वाले बीर छत्रसाल के साथ भाग्य के भरोसे पर रह गए। इस प्रकार प्राप्त हुए मनुष्यों को साथ लेकर छत्रसालजी अपने जेष्ट भ्राता अंगदराय जी के पास चले जो उस समय देवगढ़ के राजा के यहां काल क्षेपन कर रहे थे।

छत्रसालजी ने रास्ते में सुना कि देवगढ़ पर चढ़ाई करने के लिये आलमगीर औरङ्गजेब की आज्ञानुसार जैपुराधिप महाराज जयसिंह एक विकट सैन्य लिये हुए रास्ते में खेमाज़न हैं। निदान बीर छत्रसाल जी ने प्रथम महाराज जयसिंह जी से मिलना बिचार कर उसी ओर को कूच किया। महाराज जयसिंहजी ने बीर छत्रसालजी के आने की इत्तला पाकर इन्हें अपने पास बुलाया और यथा योग्य सम्मान सहित आदर पूर्वक कुशल प्रश्न पूछ कर सब प्रकार आस्वासन किया और इनके इच्छानुसार अपनी सेना के सेनायकों में से एक मुख्य पद पर इनको नियत किया। महाराजा जयसिंह जी कुछ दिन और उसी स्थान पर पड़े रहे और इसी अवसर में छत्रसाल जी ने महाराज जयसिंह जी की आज्ञानुसार अपने बड़े भाई अङ्गदराय जी को किसी प्रकार देवगढ़ से बुला लिया। अंगदराय जी भी प्राण प्रिय लघु भाई का समाचार पा कर तुरत वहां से चले आये। आहा भाई सी वस्तु संसार में और क्या है। दोनों भाई मिले और तिस पर भी ऐसे भाई कि दोनों ने एक दूसरे का मुख आजही देखा है अबतक दोनों ने सुना ही किया कि भाई सहोदर भी कोई वस्तु संसार में होती है और हमारे भी है परन्तु आज तक दोनों भ्रातृ सनेह के सुख से वंचित थे। ईश्वरेच्छा से आज वहघड़ी आई कि दोनों भाइयों का प्रेम समुद्र उमड़ कर परस्पर सम्मिलन को प्राप्त हुआ अब दोनों भाइयों को सहारा मिला परस्पर सुख दुख पूछने बतलाने का

ठिकाना मिला। धन्य है भाई! ईश्वर ने भाई एक दूसरे की सहायता केही लिये बाहुवत् उत्पन्न किये हैं और भ्रातृ स्नेह भी जीव मात्र की स्वाभाविक प्रकृति है। परन्तु ऐसे सहोदर भाइयों में अनबन कराने वाले पुरुष को धिक्कार है। ईश्वर ऐसे कुटिल स्वार्थी का सत्यानाश करे।

इसी समय खबर आई कि नवाब बहादुरखां इस सेना के सेनानायक नियत हुए हैं और महाराज जयसिंह को दिल्ली वापिस जाना है। इस वार्ता को सुन कर बीर छत्रसाल जी का चित्त कुछ दुखी हुआ परन्तु अंगदराय जी ने उस दुचित्तता को दूर करदिया और समझाया कि भाई बहादुरखां अपने पिता का एक परम मित्र है और इस द्वारा बहुत कुछ कार्य्यसिद्धि की आशा है। चम्बल नदी पर अपने पिता जी और बहादुरखां से पगबदला* हो चुका है। यद्यपि बीर छत्रसाल जी ने जेष्ठभ्राता की आज्ञा अङ्गीकार करली परन्तु इनका मन न माना और अपना यवनों प्रति स्वभाविक द्वेष भाव प्रगट करते हुए बोले कि दाउजी साहब यह सब सत्य है परंतु दुराचारी यवन जाति पर मेरा मन विश्वास नहीं करता यह बड़े धोखेबाज होते हैं समय पाकर पगबदला क्या सर्वस्व भी क्यों न बदला लें किन्तु अपना दाव नहीं

---

*पंजाब में यह रवाज है कि कोई दो मित्र जब पांच वर्ष पर्यंत बिना किसी द्वेष भाव के परस्पर सनमित्र ही बने रहते हैं तब वह आपस में एक दूसरे के सिर के पगड़ी बदलते हैं और तब से उनमें निपट सहोदर भाव होजाता है और उसी घड़ी से वह पगबदले भाई कहाते हैं॥

चूकते, अपना भला चाहने वाला इन दुष्टों पर विश्वास न लावे, अस्तु जो हो मुझे आपकी आज्ञा सिरोधार्य्य है।

उपरोक्त समाचार आने के तीसरे ही दिन बहादुर खां किंचित स्वरक्षक सेना को साथ लिए हुए आ उपस्थित हुआ। दोनों सेना नायकों का परस्पर साक्षात हुआ। दूसरे दिन महाराज जयसिंहजी ने सब सेना का चार्ज बहादुर खां को दिया और इन दोनों राजकुमारों का भार भी उसी के सर सौंप करके आप दिल्ली पधारे। इधर बहादुर खां भी कूच का डंका बजाकर तीन दिन का पथ पार करके देवगढ़ के निकट जा जमा। उधर से राजा कूरममल्लजी १७००० राजपूत सेना लेकर मुसलमानी सेना से संग्राम करने के निमित्त उद्यत हुए। दोनों ओर से पहले धुवांधार तोपें दनादन दगीं, फिर बंदूकें भी अपनी अपनी शक्ति अनुसार ठक्क फक्क करके निस्तब्ध होरहीं। अंत में लोहा बज उठा, खड्ग खेल उठे, बीर राजपूत बचे जान गदेरी पर रखकर यवन दल में पैठ परे और उन्हें मूली सा काटने लगे। तब तो शाही लशकर के पैर उखड़ पड़े किन्तु बीर छत्रसाल से यह न देखा गया। वह क्रोध से नेत्र लाल करके बोले "अरे दुष्टों क्या इसी को बीरता कहते हैं वृथा शस्त्र बाँध कर क्यों "सिपाही" नाम को लज्जास्पद करते हो, क्या तुम यह नहीं जानते कि एक दिन कभी हो मरना अवश्य है, फिर क्यों वृथा कलंक का टिपारा माथे पर धर कर मरो"। इस प्रकार कहते हुए छत्रसाल जी ने अपने घोड़े की बाग

देवगढ़ की ढाल (निशान) की ओर बढ़ाई। इनके पीछे२ शाही सेना भी हो ली,। उस समय जो घोर संग्राम हुआ वह देखनेही योग्य था। मारते काटते छत्रसालजी ने ढाल की सर्द (रस्सी) पर हाथ जा मारा। ढाल गिर पड़ी, उसी समय एक राजपूत सरदार ने इनके गरदन पर ऐसा हाथ मारा कि यदि इनके गरदन पर बिछुआ * न होता तो उसी समय इनका धड़ से सर पृथक होजाता। किन्तु हाथ ओछा बैठा और गरदन की एक विशेष नस कट जाने से यह मूर्छित होकर धरा शाई हुए। युद्ध का परिणाम यह हुआ कि छत्रसाल घायल हुए, राजा कूरम मल्लजी कैद हुए और नवाब बहादुरखांसाहिब को विजय लक्ष्मी प्राप्त हुई।

सायंकाल के समय जब सारी सेना अपने २ स्थान पर पहुंची तो सब सिपाही लोग जहां तहां खाना खाने पकाने में लगे। वहीं गप्पें उड़ने लगी "भाइ मैंने कैसा हाथ मारा तुमने देखा था न! दूसरा जवाब देता "जी हां यार" परन्तु बीर छत्रसाल जो की टोली के सिपाही न तो किसी से कुछ कहते न किसी की हां में हां मिलाते। उन्हें छत्रसालजी की बाट जोहते२ पहर भर रात्रि होगई परंतु अबतक कुछ पता नहीं चला, इसी से ये लोग उदास थे। अंत में वे सब लोग इन्हें ढूढ़ने के लिये रणक्षेत्र की ओर चले। थोड़ी ही दूर पर इन्हें लाश उठानेवाले मिले।

---

* बिछुआ एक विशेष हथियार को कहते हैं जोकि खंजर से कुछ छोटा होता है। उसे सिपाही लोग पीछे गरदन पर लगाते हैं।

इन्होंने विनय पूर्वक कहा कि भाइ तुमने कहीं हमारे मालिक छत्रसाल को तो नहीं देखा? वह एक १६ वर्षीय राजकुमार हैं। उनमें से एक ने उत्तर दिया 'जी नहीं' मगर एक तमाशा वाक़ई बेनज़ीर देखा है कि एक सवार जमीन पर पड़ा हुआ है मुर्दा है या जिन्दा सो हम नहीं जानते। चन्द निशानों से अपनी फौज का मालूम होता है। जब हम उसे उठाने के वास्ते करीब जाने लगे तो मर्दूद घोड़े ने हमलोगों को मारभगया। वल्लाह घोड़ा क्या है शैतान का बच्चा है। इस कदर दुम उठा कर दौड़ता है कि उसके पास जाने की हिम्मत नहीं पड़ती। भाई वही सवार तुम्हारा मालिक हो तो नहीं जानते। बस यह सब डोली वालों के बतलाये हुये पते पर चले पास पहुंचतेही घोड़े ने इनकी भी खबर ली, परन्तु सईस ने ज्योंही इसका नाम पुकार कर आश्वासन किया कि घोड़ा* चुप खड़ा होगया, जो यह सब लोग पास गये तो देखा कि वीर छत्रसाल उठ कर बैठे हुए हैं। किन्तु इन्हें खड़े होने व चलने की शक्ति नहीं है। इसलिए सब मिलकर इन्हें डेरे पर लाये, यहां इनका इलाज होना आरम्भ हुआ। ईश्वरेच्छा से रास्ते में ही १५ दिन में इनके घाव का अंगूर भर आया। यह चंगे होगये और चलने फिरने वा घोड़

---

* स्वस्थ होजाने पर वीर छत्रसाल ने इस घोड़े का नाम भलेभाई अर्थात् सच्चा सहोदर रक्खा, इसकी कब्र अब भी मऊ के महलों से ६: फरलांग दक्खिन में बादल महलों के पास बनी है। और तभी से इस देश में घोड़े को भलाभाई कहते हैं।

पर सवार होने योग्य भी होगये। इसी अंतर में कुछ दिन पश्चात नवाब बहादुरखां सेना सहित दिल्ली आ उपस्थित हुए।

वाह रे मन धन्य तुझे! तू आत्मा का आज्ञाकारी बन कर भी अपनी चुलबुली प्रकृति को नहीं छोड़ता। बीर छत्रसाल के मन में भी आकाश पाताल का अंतर पड़गया। वह मनही मन विचारने लगे अब हमें शहंशाह औरंगजेब के यहां से जागोर मिलेगी, खिताब मिलेगा और फिर हम इसी प्रकार बढ़ते २ महाराज जैसिंह की नाईं एक शाही सिपहसालार होजावेंगे। यद्यपि इनके मन के विचार पर आत्मा निस्तब्ध थी परंतु तिसपर भी मन अपनी चुलबुलाहट से न चूकता। दिल्ली पहुंचने पर इनके मन की बात मनहीं में रह गई, आत्मा की जै हुई। नवाब बहादुर खां को पारितोषक में कुछ जागीर मिली और बहादुरी का खिताब मिला इसके, अनुयायी कृपापात्र मुसलमान अपने २ पद के अनुसार कुछ रूपया पैसा पाते कुछ न कुछ और के और बन गए; परन्तु बीर छत्रसाल आशाही आशामें निराशा को पा कर यवनों के पूर्ण रूप से दृढ़ शत्रु बन गये।

बादशाह से अपनी बीरता के लिये कुछ परितोषिक न पाकर बीर छत्रसाल जी को चाहे जैसा लगा हो पर मुझे तो अच्छा लगा। विचारिये तो सही कि यदि बीर छत्रसाल जी यवन राज्य से परितोषिक पाकर यवन दल में पदाभियुक्त होते तो क्या करते? मेरे

जान तो केवल राजपूत बीरों का सत्यानाश, आर्य्य अब-लाओं का धर्म्म नष्ट, और और भी न जाने क्या क्या कुटिल कौतूहल करते। कारण कि जिसका अनुयायी, आज्ञाकारो वा मित्र बन कर जो पुरुष रहता है उसमें उसी की प्रकृति (स्वभाव) आजाती है। देवगढ़ की लड़ाई में इन्हें घाव क्या लगा था ज्ञात होता है ईश्वर ने इन्हें साक्षात इनके अकर्तव्य कर्म करने का पारितोषिक इन्हें दिया था। ईश्वर जिसे जिस काम के निमित निर्माण करता है उसे उसी के निमित्त आत्मस्वरूप से प्रेरणा भी करता है अतएव इसके विरुद्ध कर्म करने में श्रेय की आशा करना केवल अज्ञान है। वरन जिस कार्य्य के करने में चाहे मनवाञ्छित फल प्राप्त हो परन्तु यदि आत्मा कातर हो तो उसे अकर्तव्य जान कर त्याग देना उचित है और जिस कार्य में सफलता प्राप्त न होने पर भी आत्मा को संतोष हो उसे दत्तचित्त होकर करे।

बीर छत्रसाल कुछ सोच बिचार कर अपने भाग्य की परीक्षा करने को नवाब बहादरखां के साथ एक बार और दक्षिण की चढ़ाई पर गए। परन्तु फिर भी उपरोक्त फल प्राप्त हुआ। निदान तब बीर छत्रसाल जी के नेत्र खुले और उन्होंने हाथ जोड़ कर विनय पूर्वक भाई अंगदराय से निवेदन किया कि देखिये मैंने प्रथमही कहा था कि इस यवन सेवा का फल उत्तम न होगा और हो भी क्यों, ये तो हमारे प्राकृतिक शत्रु हैं। हमारे पिता ने जिसके राज्य में खरभर पार दिया, उपलक्षित

यवनों का संहार किया और अपने जीवन पर्य्यंत इस जाति के लिये करालकाल स्वरूप रहे तिसके हम पुत्र हैं भला ये लोग हमारे प्रति कैसे कोई उपकार करेंगे? इन दुष्टों ने हमारे देश प्रति कैसा अत्याचार मय व्यवहार किया और कर रहे हैं। ये हिन्दूधर्म के, हिन्दू जाति के, हिन्द के, वा हिन्द शब्दमात्र के दुश्मन हैं। इनका दृढ़ उद्देश हिन्दू शब्द का नाश करना ही है। जिसे ये देखते हैं कि अमुक पुरुष धर्म मय कार्य्य कर रहा है ये उसी के रक्त के प्यासे होजाते हैं। इनसे हमारा भला क्योंकर हो सकता है। और हो भी तो धिक्कार है ऐसे धन सम्पदा और ऐस्वर्य पर। क्योंकि इन दुष्टों के साथ रह कर वही कर्म करना पड़ेगा जो ये करते हैं। हाय! अपने हाथ से अपने धर्म और अपने ज्ञाति बान्धवों का सत्यानाश करना तो मुझसे न होगा। कहा है कि 'जाति को न जाने सो न जाने कैान जाति को,' यदि मैं सेवा भी करूंगा तो किसी ऐसे बीर पुरुष को कि जो भारत जननी का सच्चा बीर पुत्र, आर्य्य धर्म का रक्षक और इन दुष्ट अधर्मी यवनों का दर्पध्वंस करने वाला होगा।

बीर छत्रसालजी के व्याख्यान ने अंगदरायजी के चित्त पर पूर्ण अधिकार किया और इसीलिए वह भी इनकी प्रतिज्ञा के अनुयायी हुए। उन्होंने उत्तर दिया कि भाइ कालक्षेप करने के निमित्त इस समय कुछ न कुछ उपाय करना अवश्य है और वह उपाय इस आपत्ति की दशा में केवल सेवा (नैाकरी) करना है, इस हेतु मेरे विचार

में तो यही आता है कि पूनाधिपति छत्रिपति महाराज शिवाजी की शरण में चलना उचित है। वही एक हिन्दू-धर्मरक्षक बीर पुरुष लक्ष्य में आता है । उसीके सहारे अपने विचार फलीभूत और प्रतिज्ञा पूर्ण हो सकती है।

इस प्रकार छत्रसालजी ने छत्रपति महाराज शिवाजी के पास पूना जाने का पूर्ण अनुसंधान किया। और तब दोनों भाई दिल्ली को त्याग कर साथियों सहित दैलवारे में आये। यहां बीर छत्रसालजी ने करो के प्रमारों की बेटी "देव कुंवरि, से अपना ब्याह किया। जिसकी (नजर न्योछावर) टीका पहिलेही जब कि ये अपने पितृव्य सुजानरायजी के पास थे, हो चुकी थी वही, "देव कुंवरि" इनकी बड़ी अर्थात पहिली रानी हैं इनके कोई सन्तान नहीं हुआ।

विवाह होजाने पर बीर छत्रसालजी अपनी नव दुलहिन तथा और अपने सङ्गी साथियों सहित पूना की ओर पधारे। परन्तु जितने रास्ते पूना को जाने के थे सभों पर शिवाजी की बिकट चौकी बैठी हुई थी, कि इधर पूना को कोई जीवित न आने पावे। इस कारण अब बीर छत्रसाल जी को समाज सहित अहेरियों कैसा वेष धारण करना पड़ा। जहां कहीं भोजन प्रसाद के निमित्त अन्नदेव का अभाव होता तो इन्हें भेषानुसार कर्म द्वारा ही जीविका निर्वाह करनी पड़ती। निदान इस प्रकार शिवाजी को विकट चौकियों को दक्षिण वांम देते हुए कृष्णारावाटी नाम स्थान पर ये आ उपस्थित हुए। इन्होंने यहां पर काठ

के टुकड़ों का बेड़ा बनाकर उसीके सहारे नदी को पार किया और पूना में जा पहुंचे तथा शहर पनाह के सिमाने १ मील के अंतर पर डेरा डाला। यह सायंकाल के समय नगर की शोभा देखने को पूना में गए। इधर उधर देखे भाल करते २ जब ये राज्यमहल के निकट पहुंचे, उस समय गोधूली वेरा होगई थी। वीरछत्रसाल जी कभी यहां खड़े होते कभी वहां बैठते और इस प्रकार महलों में आने जाने वालों की वार्ता सुनते गुनते जाते थे। उसीसे आप अपना मतलब निकाल कर पहर रात्रि होते २ अपने डेरे पर लौट आए।

ज्यों त्यों करके दिन रात्रि के १६ घन्टे व्यतीत करके दूसरे दिन सायंकाल के चार बजते २ छत्रसाल अपने एक पालतू लवा (एक चिड़िया) को–जिसे ये बहुत दिनों से पाले हुए थे और बड़े प्रेम से रखते थे––साथ लेकर राज्य महल की ओर चले कारण कि पिछली रात्रि इन्हें राज्य महल के आने जाने वालों से मालूम होगया था कि शेवाजी 'लवाबाजी' के बड़े प्रेमी हैं।

छत्रसालजी ने राजद्वार पर पहुंच कर अपनी इत्तला कराई। इनकी दो चार बार की पुकार तो पासबानों ने अनसुनी करके उड़ा दी, किन्तु एक किसीने जाकर शिवाजी से निवेदन किया कि एक बोस इक्कीस वर्ष का लड़का जो रङ्गढङ्ग से क्षत्री मालूम होता है एक लवा लिये दरवाजे पर बैठा है और श्रीमान् के दर्शन चाहता है। शिवाजी ने तुरन्त इन्हें बुलालाने की आज्ञा दी।

छत्रसालजी ने दरबार में जाकर उचित रीति से प्रणाम किया और अपनी तलवार नजर की। शिवाजी तो स्वयं बड़े बुद्धिवान और चतुर पुरुष थे। इनका रङ्गढङ्ग और व्यवहार बर्ताव देखकर उन्होंने ताड़ लिया कि यह कोई वीर और कुलीन पुरुष है। इसलिये उन्होंने इनको अपने सरदारों में बैठने की आज्ञा दी। शिवाजी की आज्ञानुसार लवा छोड़ा गया। निदान छत्रसाल जी के लवा ने शिवाजी के लवों को मार भगाया। इसपर शिवाजी बहुत प्रसन्न हुए। अब वीर छत्रसाल जी के नाम ग्राम की चरचा चली। तब वीर छत्रसालजी ने अपना और अपने पिता का नाम बतलाया और समस्त अपनी बीती वार्ता और अपने मन का संकल्प शिवाजी से निवेदन किया। शिवाजी वीर छत्रसालजी की वीरता और प्रतिज्ञा सुनकर कहने लगे- "छत्रसाल धन्य, आपके माता पिता को धन्य है! क्यों न हो! वीर पुरुषों के वीर ही पुत्र होते हैं! आपने अपनी देश भक्ति वा देश रक्षा के निमित्त वा निज सनातन धर्म रक्षा के हेतु जो दुष्ट विजातियों को ध्वंस करने का दृढ़ संकल्प किया है वही संकल्प सत् रूप होकर आप की सहायता करेगा, किन्तु इसमें यदि किसी प्रकार कोई बड़ी भारी आपत्ति भी आ उपस्थित हो तो भी आप धृत धर्म को न त्यागना, मनहार न होना, वरन आपत्ति के समय मन को रोक कर और भी दृढ़ता के साथ काम करना। पुरुषार्थी पुरुष से ईश्वर भी डरता है। संसार में धीरता, दृढ़ता और दत्तचित होकर पुरुषार्थवत् उपाय

करना ही सार है। देखिये विजाती म्लेक्षों ने थोड़े से होने पर भी बार २ मार करके हमारे इतने बड़े देश पर अधिकार करलिया है। क्या हम क्षत्री लोग उनसे किसी प्रकार कम हैं? परंतु एक मात्र आलस्य ही हमको तेजहीन किये है। धर्म के लिये प्राण भी जावें तो जाने दो, धर्म-प्रति दृढ़ संकल्प न त्यागो, हताश न हो, कातर न हो, हृदय में दृढ़ता और ईश्वर को निरंतर अपना रक्षक जान कर देश की सेवा करो। दुराचारी, विजाती-विदेशियों पर कभी विश्वास न लाओ। ये बड़े स्वार्थपर, कपटी और दुष्ट होते हैं। यद्यपि मूढ़ कापुरुष इन्हीं को सेवा करनेही में अपने को धन्य मानते है किन्तु वास्तव में वह मूढ़ अपना मूल आप नाश करते हुए परलोक के लिये अधर्म कृत दुःख संचय करते हैं। ईश्वर परम श्रेष्ठ क्षत्री कुल में इसी लिये जन्म देता है कि अपने धर्म वा देश की रक्षा करें परन्तु जो ईश्वराज्ञोलंघन करके अधर्म पथ पर पैर रखने हैं, वे सुख पाने को कदापि इच्छा न करें। वीर छत्रसाल जी जो आपके चित्त में यह बात समाई कि हम बिजाती यवनों के अत्याचार से अपने देश की रक्षा करें सो बहुत ही अच्छा हुआ। ईश्वर आपकी इच्छा पूर्ण करे और जो मेरे से आप सहायता चाहते हैं, सो मैं तन, मन, धन तथा प्राण भी आप ऐसे बीर पुरुष की सहायता के लिये देने को प्रस्तुत हूं। किन्तु मेरे आधीन रहने से आप का बाहुबल संसार में विख्यात न होगा इस हेतु आपको जिस प्रकार चाहिये मुझसे आर्थिक सहायता लीजिये

और स्वयं अपनी सेना तैयार करके देश रक्षा कीजिये और यवनों का मान मर्दन करके अपने बीरत्व और क्षत्रियत्व का प्रकाश कीजिए।

इस प्रकार समझा बुझा कर शिवाजी ने बीर छत्रसाल को एक आज्ञा पात्र देकर आदर पूर्वक बिदा किया। उस पत्र का आशय यह था कि एक तो शिवाजी की चौकी वाले उन्हें रास्ते में न रोकें, और दूसरे जहां कहीं से चाहैं वे शिवाजी की रियासत से मन माना द्रव्य पा सकते थे।

अब तो छत्रसालजी का मन फूला हुआ जामें में नहीं समाता था। शिवाजी के शिक्षारूपी घृत को पाकर छत्रसाल के मन की क्रोधाग्नि द्विगुण प्रज्वलित हो उठी, धन मनमाना मिलगया परन्तु अब रहा इस बात का निश्चय कि अब किस प्रकार, कैसे, कहां से, और कब कार्य्य आरंभ करें। इसी बिचार में चलते२ इन्होंने रास्ते में सुना कि एक शुभकरण नाम बुन्देला औरंगज़ेब का कृपा पात्र होकर कहीं पासही एक किले का किलेदार है। कुछ सोच विचार कर बीर छत्रसालजी सुभकरण से मिलने के लिये गए। सुभकरण ने अपने एक गोत्र भाई का आगम सुनकर इन्हें बड़े आवभाव से लिया। दोनों में खूब प्रेम बरसने लगा। 'छत्रप्रकाश' में लिखा है कि बीर छत्रसालजी वहां एक मास पर्य्यंत रहे, इनके मन में तो कुछ और ही धुनि समाई हुई थी इसी से जब वहां से चलने का बिचार किया तब राव शुभकरन ने इन्हें रोका

और कहा कि भाइ घर जाकर क्या करोगे मैं आपके नाम से एक प्रार्थना पत्र सम्राट औरंगजेब को लिखता हूं। वह आपको निस्सन्देह कोई उत्तम पद देंगे, तब हम आप निरंतर साथ ही रहेंगे। भाई राज्य सेवा से ही मनुष्य को सम्मान प्राप्त होता है। इसलिए मेरा कहा मानिगे, मैं खुद अपना वकील भेज कर सम्म्राट की आज्ञा मँगा लेता हूं।

शुभकरन के व्याख्यान का अनुमोदन बीरछत्रसाल जी ने इस प्रकार किया-कि काकाजी साहब आपकी आज्ञा उचित है किन्तु मैं सम्म्राट औरङ्गजेब की सेवा कुछ दिन पर्य्यंत कर चुका हूं। नवाब बहादुरखां के साथ देवगढ़ की मुहिम पर हो चुका हूं और यवन सेवा का जो कुछ परिणाम होता है उसे भी पा चुका हूं। यवन सेवा से मेरे हृदय में इस प्रकार घृणा उत्पन्न होगई है कि मैं अब आजन्म उसको भूलने वाला नहीं हूं। और जो आपका कथन है कि घर पर क्या करोगे सो सुनिये। मैं सेना जोड़कर देश की रक्षा और यवनों के अत्याचार को नाश करूंगा। यदि आपकी इच्छा मेरे साथ रहने की है और मुझपर आपका सच्चा प्रेम है। तो आइये मेरा साथ दीजिये और अपने क्षत्री नाम को सार्थक करते हुए पवित्र पुरुषाओं के रक्त को सफल कीजिये।

सुभकरन ने बीर छत्रसालजी के मुंह से अंतिम बात सुन कर उन्हें राज्य विद्रोही जान उन्हें वहां से तुरंत बिदा किया।

छत्रसाल जी का नाम पढ़ते २ आपको बड़ी देर हो गई इसलिये अवकाश पाकर मैं तनिक अब सम्राट आलमगीर औरङ्गजेब के दरबार का हाल लिखता हूं। सम्राट औरङ्गजेब अपने राज सिंहासन (तख्तताऊस) पर सुशोभित था। दक्षिण पार्श्व में बीर मुसल्मान योधागण थे और बामपार्श्व में अभागे यवन सेवी राजपूत सरदार हाथ बांधे खड़े हुए अपने को धन्य मान रहे थे। देश देशांतरों की बातें हो रहीं थीं। बातचीत होते२ बुन्देलखंड की बारी आई। बेचारे बुन्देलखंड पर औरङ्गजेब की क्रूर दृष्टि पड़ी! आहा! यही दृष्टि यदि किसी मुसलमान सरदार पर पड़ती तो उसका भला ही हो जाता परन्तु पराधीन हिन्दुओं पर बिजातीय सम्म्राट की दृष्टि पड़ने का फल केवल उनके विनाश का कारण है।

औरङ्गजेब ने (सभासदों के प्रति) कहा कि सुना जाता है कि बुन्देलखंड में अभी हिन्दू लोग बड़ा बखेड़ा और ढोंग किया करते हैं। यह सुन कर एक सभासद (हाथ बांध कर खड़े होकर बड़े अदब से) बोला कि हुजूर वाक़ई वहां के हिन्दू लोग बड़े शैतान हैं। वह हर वक्त तिलक लगाते संख बजाते और इन बातों से दीन इसलामी की तौहीन करते हैं। इस वक्त तक ये लोग डाकू चम्पतराय की आड़ में खेलते रहे अब वह नहीं है, और होता भी वह नाचीज़ तो हुजूर के बुलन्द इक़बाल के सामने था ही क्या। यह सुन कर औरङ्गजेब ने कहा तो अब क्या करना मस्लहत है। तब एक दूसरा सभासद